(उपन्यास)

लेo—पंo बालदत्त पाण्डेय ।

प्रकाशक

भारतीय पुस्तक एजेंसी

नंo ११ नारायणप्रसाद बाबू लेन,

कलकत्ता ।

प्रथमावृत्ति १०००]   १९७८ आश्विन   [मूल्य ॥)

प्रकाशक—
वेनीनारायण द्विवेदी
तथा
श्रीकृष्ण पाण्डेय।
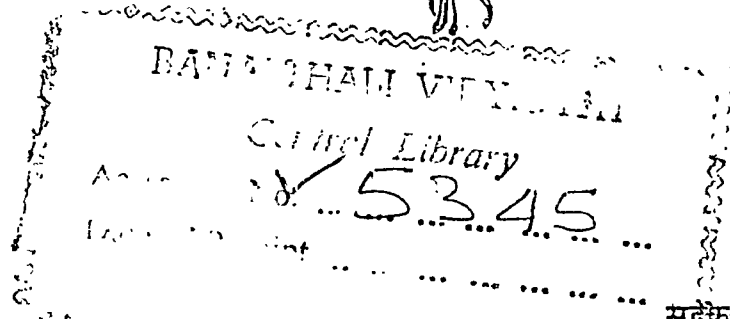
मुद्रक—
महादेवप्रसाद सेठ
"बालकृष्ण प्रेस"
१२, शंकर घोष लेन,
कलकत्ता।

मातृ-वन्दना ।

देवी विश्व-विमोहिनी, रुचिकरी शोभा सुधा-निर्झरी ।
नाना-चित्र विचित्र-दृश्य-जड़िता सौन्दर्य्य रत्नाकरी ॥
लक्ष्मी अक्षय-भूषिता भगवती मातान्नपूर्णेश्वरी ।
वन्दे भारत-भूमि विश्व जननी प्रत्यक्ष विश्वेश्वरी ॥१॥

* * *

ब्रह्मज्ञान-विहारिणी, अघहरी, पुण्य-प्रभा वाहिनी ।
नित्यानन्दमयी, सु-वेद-मुखरा, मोहान्धतानाशिनी ॥
विज्ञानोद्भव-कारिणी, सु-कविता-संगीत-कादम्बिनी ।
वन्दे वीर-महाबली-सुतवती दुर्ज्जेय कात्यायिनी ॥२॥

* * *

आद्याशक्ति-सुरूपिणी, अभयदा, देवासुराराधिता ।
ज्ञानालोकविकासिनी, गुणमयी, सर्वेश-लीलाश्रिता ॥
सद्धर्म्म-प्रतिमा, प्रशान्तवदना, शान्तिप्रदा सुस्मिता ।
वन्दे दुर्गति-नाशिनी, सुपथगा, त्रैलोक्य-संपूजिता ॥३॥

* * *

वन्दे पत्र-फलादि-पुष्प-भरिता शोभायमाना धरा।
शस्यान्नादि-सुपूर्ण-क्षेत्र-जड़िता श्यामायमाना धरा॥
विद्युद्दाम-विलग्न-नीरद-छटा-आच्छन्न-नीलाम्बरा।
वन्दे ग्राम-पुरी-विशालनगरी-संशोभिता श्रीधरा॥४॥

* * *

चन्द्रार्क-ग्रह-मण्डली-परिवृता साद्यन्त नित्योज्ज्वला।
वातान्दोलित-सिन्धुराज-लहरी-संसेविता निर्मला॥
नाना-वर्ण-विहंग-केलि-कलिता रम्याटवी-कुन्तला।
वन्दे षड्ऋतु-शालिनी मलयजा-स्निग्धांचला-शीतला॥५॥

* * *

कल्लोल-ध्वनि-पूर्ण-निर्झर-नदी-युक्ता मनोहारिणी।
पीयूषोपम-दिव्य-पुण्य-सलिला-स्रोतस्विनी-धारिणी॥
रत्नोत्पादन-कारिणी, सुखकरी, सत्कीर्ति-विस्तारिणी।
वन्दे शैल-किरीटिनी, अनुपमा, माता जगत्तारिणी॥६॥

* * *

श्यामसुन्दर खत्री।

समर्प्पण ।

स्वर्गवासी प्राण-प्यारे अनुज पण्डित वेदव्रत पाण्डेय (माना) को

प्रेम पुष्पाञ्जलि स्वरूप समर्पित ।

प्यारे माना,

तुमने बड़ा धोखा दिया। बाल्यकालसे निरन्तर साथ रहे, एकही विचारोंमें पले, बड़ी बड़ी आशाओंके पुल बाँधे, मातृ-भूमिकी सेवा करके नये नये विचार सोचते रहे; पर कार्य्य करनेके समय तुम हमें असहाय अवस्थामें छोड़कर सदाके लिये विलग हो गये। हमें संसारमें एक तुम्हारा ही बल था। अवस्थामें छोटे होते हुए भी तुम हमारे नैतिक गुरु थे। तुम्हारे राजनैतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक विचार जैसे ऊँचे थे, ईश्वरने तुम्हें वैसी बलवती आत्मा भी दी थी। तुममें एक साथ दयानन्द, विवेकानन्द, लाजपतराय और रामतीर्थकीसी कार्य्यकारिणी शक्ति थी। पर हाय! इसका विकाश न होने पाया। कमल कली बिना फूले ही कुम्हला गई। मुझमें इतनी शक्ति कहाँ कि तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण कर सकूं। पर जो कुछ बना, लो इसे स्वीकार करो "वन-देवी" तुम्हें समर्पित है। यह तुम्हारे पवित्र विचारोंका संग्रह तथा तुम्हारे दुःखित भाईकी प्रेम-पुष्पाञ्जलि है।

तुम्हारा व्यथित हृदयी—

भैया!

भूमिका ।

हिन्दी भाषा-भाषियोंके समक्ष "वन-देवी" को रखते हुए मुझे जो प्रसन्नता हो रही है, उसका उल्लेख करनेमें मैं बिलकुल असमर्थ हूँ। इस अपरिसीम प्रसन्नताका एक कारण है। वह यह कि यद्यपि इस समय हिन्दी संसारमें अनेकानेक उत्तमोत्तम ग्रंथ निकाले जा रहे हैं जिन्हें अधिकांश लेखक अपनी रहीसही मौलिक शक्ति एक किनारे पटक अन्यान्य साहित्यके ग्रंथोंके अङ्ग भङ्गकर अनुवाद रूपमें अथवा चौरावृत्तिके अनुयायी बन मूल-लेखकके नामको अपनी प्रतिष्ठा-हीनता समझ, मटियामेटकर मौलिक रूपमें लिखनेका पूर्ण प्रयास कर रहे हैं और प्रकाशक भी दादी, चाची, नानी आदि नाम रखकर उन्हें ऊपरी भाग प्रचुर धन व्यय करके भाव रहित रंगीन चित्रादिकोंसे सुसज्जितकर हिन्दी पाठकोंके कर कमलोंमें भेंटकर उनकी न्योछावरसे धनाढ्य बन रहें हैं—तथापि यह दृढ़ता पूर्व्वक कहा जा सकता हैं कि हिन्दीमें अभी स्वतन्त्र रचना अत्यल्प है या यों कहिये कि है ही नहीं। हिन्दी-संसारकी ऐसी परिस्थितिमें नवीन प्रोत्साही लेखकका स्वतन्त्र-रूपसे लिखा हुआ यह उपन्यास मौलिक गद्य-काव्य है, यही विशेष प्रसन्नताका कारण है।

इस "वनदेवी" को यदि वर्णना–बहुल बड़ा गल्प या

अनल्प कल्पनामय और विशिष्ट वर्णनमय खण्ड काव्य कहें तो कदाचित् अतिशयोक्ति न होगी। इसमें पराधीन देशोंके अधिवासियोंके मानवीय कर्त्तव्य एवं गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करनेवाली सुशिक्षिता आर्य्य ललनाओंके सुदृढ़ विचारपूर्ण आदर्श जीवनका वर्णन बड़ी ही प्रासादिक भाषामें किया गया है। कहीं कहींके प्राकृतिक दृश्य भी सुन्दरता पूर्व्वक दर्शाये गये हैं। इसमें वनदेवीका चरित्र चित्रण करनेमें लेखकने स्वाभाविकताकी ओर विशेष ध्यान दिया है। यदि इसीप्रकार हिन्दीके अन्यान्य लेखक भी मौलिक रचना करनेकी ओर ध्यान देंगे तो निश्चय है मातृ-भाषाको हम मनवांछित स्थान-पर पहुँचा सकेंगे।

इस पुस्तकको मेरे मित्र श्रीयुक्त बाबू श्यामसुन्दर खत्रीने अपनी कविता द्वारा एवं कलकत्तेके प्रसिद्ध चित्रकार बाबू रामेश्वर प्रसाद वर्म्माने भावपूर्ण चित्रों द्वारा सर्वाङ्ग सुन्दर बनानेका अनुग्रह किया है। आशा है सहृदय हिन्दी पाठक उक्त मित्रोंको प्रसन्नता-पूर्वक मेरी ओरसे धन्यवाद देते हुए इस पुस्तकको अपनावेंगे।

विनीत—

देवनारायण द्विवेदी।

वनदेवी

पहला परिच्छेद ।

वीर-प्रसूता, रत्नगर्भा अवधकी पवित्र भूमिके अन्तर्गत पतित-पावनी भगवती सरयूके तटपर श्रीनगर नामका एक अत्यन्त प्राचीन, प्रसिद्ध तथा सुरम्य ग्राम है। चारों ओर सघन वनसे घिरे हुए हरी हरी दूबके सुविस्तृत मैदानके मध्यमें बसनेके कारण यह बड़ा सुहावना प्रतीत होता है। सूर्योदयके पहले यहाँकी शोभा दर्शनीय होती है। लहलहाते हुए सुन्दर, सुकोमल पल्लव-युक्त वृक्ष मन्द मन्द समीरके झोंकोंसे झूमते हुए बड़े मनोहर लगते हैं। प्रातःकाल होते ही भाँति भाँतिके पक्षी उनकी डालियोंपर बैठकर अपनी

अपनी सुरीली बोलियाँ बोल बोल मानो प्रकृति देवीका गुणगान किया करते हैं। गाँवके चारों ओर यत्र तत्र बड़े बड़े पक्के जलाशय बने हुए हैं। जिनके किनारे किनारे पुराकालीन सुविशाल देवालय शोभा पाते हैं। इन मन्दिरोंकी बनावट तथा चित्रकारी देखकर हृदय बड़ा सुखी होता है। प्राचीन शिल्पकारोंकी निपुणताका स्मरणकर गर्व होता है। पर वर्त्तमान पतित दशाका ध्यान करते ही शोक और लज्जासे मस्तक अवनत हो जाता है। प्राचीन कालमें यह स्थान कितने ही उन्नत-मना, उदार-चेता ब्रह्मलीन आर्य्य ऋषियोंका आवास-स्थान था। किसी समय इन मन्दिरोंकी प्राचीरें वेद-मन्त्रोंकी ध्वनिसे गूँजा करती थीं। यद्यपि समयके परिवर्तनसे अब वह अवस्था नहीं रही ; पर अन्य स्थानोंके देखते हुए यहाँकी दशा अब भी कुछ कुछ सन्तोषदायक है। इसके कई कारण हैं। बहुत दिनोंसे यहाँकी भूमि उन्हीं ऋषियोंकी सुयोग्य सन्तानोंके अधिकारमें चली आती है और प्रायः उन्हीं ब्राह्मण सन्तानोंसे बसी हुई भी है। प्रातःकाल होते ही चारों ओर मन्दिरोंसे घण्टे घड़ियालोंकी ध्वनि आने लगती है। वायु-मण्डल प्रार्थनाके उच्च नादसे गूँज उठता है। छोटे बड़े सभी स्नानादिसे निवृत्त हो श्रद्धापूर्वक देवाराधनाके निमित्त एकत्रित होते हैं। खूब धर्म्म-चर्चा तथा प्रेमालाप होता है।

इसी रमणीक ग्रामके पण्डित रामकिशोर वाजपेयीका आस पास बड़ा दबदबा है। लोग उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। छोटे बड़े सभीकी वे आवश्यकता पड़नेपर सहायता किया करते हैं।

आपकी अधीनतामें श्रीनगर वर्त्तमान कालका उदाहरण स्वरूप है। बहुत दिनोंसे यह आपके पूर्व्वजोंहीके अधिकारमें चला आता है। आपके पिता महाराज देवीप्रसाद् बड़े साधु-स्वभाव धर्म-परायण तथा न्याय-निष्ठ थे। अपनी प्रजाका वे पुत्रवत् पालन करते थे। और उसके छोटेसे छोटे कार्य्यमें भी सदा सहायक रहते थे। पण्डित रामकिशोरजी योग्य पिताके योग्य पुत्र हैं। उन्होंने अपने पिताके आचरण तथा स्वभावका राई राई अनुकरण किया है।

पढ़ने लिखनेमें भी आप बड़े कुशाग्र बुद्धि थे। वर्त्तमान दोष-युक्त शिक्षा-प्रणालीके प्रसादसे प्रायः बड़े बड़े प्रतिभाशाली विद्यार्थियोंके भाग्य परीक्षाकी चक्कीमें पिस जाते हैं; परन्तु असाधारण मेधावी पण्डित रामकिशोर कठिनसे कठिन विषयोंमें चुनौती दिखाते थे। बी० ए० पास करनेके पश्चात् आपके सामने कठिन समस्या उपस्थित हुई थी। उत्तमतापूर्वक उत्तीर्ण होनेके कारण सरकारने आपको डिप्टी कलक्टरी देनी चाही। मित्रों तथा सम्बन्धियोंने वकालत पढ़नेका अनुरोध किया। वकालत कर सफलता प्राप्त करनेमें जिन गुणोंकी आवश्यकता होती है, वे प्रायः सभी आपमें विद्यमान थे। आपमें विद्वत्ता असाधारण थी। वक्तृत्व-शक्ति बहुत बड़ी चढ़ी थी। कठिनसे कठिन विषयको भी आप बड़ी सरलतासे समझा देते थे। तक़रीर आपकी इतनी ज़बर्दस्त होती कि बड़ेसे बड़े विरोधीको भी आपका लोहा मानना पड़ता। सामयिक पत्रों तथा पत्रिकाओंमें विवादास्पद विषयोंपर आपके गम्भीरतापूर्ण लेख पढ़कर लोगोंके हृदयोंमें

आतङ्क छा जाता। सहसा आपके विरुद्ध लेखनी उठानेका किसी-को साहस भी न होता।

पर वकील वनकर न तो आप अपने दीन हीन देश-बन्धुओंका खून चूसनेके पक्षपाती थे और न सरकारी नौकरी कर अपनी प्यारी स्वतन्त्रताके विसर्जन करनेहीके। असहाय देश-वासियों-की दीन-दशाका आपको पहलेहीसे अनुभव हो चुका था। उनकी दुर्दशाका ध्यानकर आपका हृदय काँप उठता। एकान्तमें बैठकर उनलोगोंको उस दशासे उबारनेके उपाय आप निरन्तर सोचा करते। वे मनही मन कहते—जिन कृषकोंके उपार्जन किये हुए अन्न-वस्त्रसे सारे संसारका पालन होता हो, उनकी ऐसी निकृष्ट दशा! ऐसी भारी अधोगति!! जहाँ दूसरे देशोंके श्रमजीवी तथा किसान कृषि-विज्ञानसे पूर्ण अभिज्ञ, अपने उत्तर-दायित्वके पूरे जानकार, व्यावहारिक जीवनमें पूर्ण स्वतन्त्र, अपनी भूमिके पूरे स्वत्वाधिकारी तथा आत्माभिमानसे पूर्ण, वहाँ अपने देश वासियोंकी पशु-तुल्य दुर्दशा-ग्रस्त दशाका ध्यानकर आपको मनही मन बड़ा क्रोध होता। जिन वेचारोंको वर्त्तमान शिक्षा-प्रणालीका पता नहीं, समयकी गतिका कुछ ध्यान नहीं, वैज्ञानिक ज्ञानकी बात तो दूर रही, जिन्हें ककहरासे भी परिचय नहीं, जिनका अपने गाढ़े पसीनेसे कमाई हुई भूमिपर तिल मात्र भी अधिकार नहीं तथा शताब्दियोंके अत्याचारसे जिनके हृदय भग्न हो चुके हैं, भला उस देशकी ऐसी दुर्दशा न होगी तो और कहाँ की होगी? यही सब सोचकर उन्होंने सरकारी नौकरीसे मुँह मोड़ा,

वकालत कर घृणित उपायोंसे देशका धन चूसनेवाली आशा-देवी-को दूरहीसे नमस्कार किया और मातृ-भूमिके सच्चे सेवककी भाँति अत्याचार-पीड़ित असहायों तथा अनाथोंकी दशा सुधारनेके पवित्र कार्य्यमें हाथ लगाया।

जमींदारीके काम काजकी देखभाल आप पिताके समयसे ही करने लगे थे। उनके शरीरान्तके उपरान्त उसमें आपने खूब उन्नति की। किसानोंकी उन्नति करनेके लिये आपने नये नये उपाय निकाले। सबसे विना संकोच मिलते, उनकी दुःख-वार्ता सुनते और आवश्यकतानुसार उनके अभावोंको दूर करनेका उपाय करते। प्रजा इन्हें अपना सच्चा उद्धारक समझती। आप अपने यहाँके मामले स्वयं निपटाते। सन्ध्या-समय सारे कामोंसे निवृत्त हो दरवाज़ेकी खुली हुई फर्शपर आराम-कुर्सी डालकर बैठते ही लोग इन्हें घेर लेते। बड़े बड़े पेचीले मामले पेश होते; पर वे उन्हें बड़ी सरलतासे सलटा देते। प्रजा प्रफुल्ल-चित्त, नत-मस्तक उसे स्वीकार करती। इस प्रकार अदालतमें सहस्रों रुपये वृथा नष्ट न होते। अदालतका कभी कोई नाम भी न लेता; उस ओरसे सबको विरक्ति सी हो गई थी। कहींपर लड़ाई झगड़े तथा मारकाटका नाम ही न सुन पड़ता। चारों ओर सुख और शान्ति विराजती थी।

अन्य सहयोगी जमींदारों तथा सरकारी कर्म्मचारियोंकी भाँति आप प्रजाको धन पैदा करनेवाली मशीन न समझते थे। आपका ध्यान था कि, कृषक ही हमारे अन्नदाता हैं। उन्हींकी

बदौलत अमन चैन है। वेही संसारके कल्प-वृक्ष हैं, जातीयताकी जीवन-ज्योति हैं तथा सभ्यता रूपी वृक्षकी जड़ हैं। यदि जड़ ही न सींची जायगी तो वृक्ष कितने दिनतक रहेगा। उसका नाश अवश्यम्भावी है। भारतके अधःपतनका यही मुख्य कारण है। जिनकी बदौलत यह सब आराम हो, उनके कष्टोंका ध्यान न दिया जाय, यह कितनी अन्धेरकी बात है! कितना भारी अन्याय है!! यही सोचकर आप तन, मन धनसे उनकी सहायता करते। धनकी आवश्यकता होनेपर धन देते तथा अन्य जिस प्रकारकी भी सहायताकी आवश्यकता होती उसे देनेमें आप कभी न हिचकते।

सबकी सुविधाके लिये एक कृषक सङ्घ स्थापित किया गया था। प्रति सप्ताह उसका अधिवेशन होता। सभी प्रजा-जन वहाँ एकत्र होते और अपने अपने अभावोंको उपस्थित करते। उनके दूर करनेके उपाय सोचे जाते। गाँव गाँवमें पंचायतें भी बनाई गई थीं। उनका एक एक कोष भी स्थापन किया गया था। उसमें प्रतिवर्ष प्रत्येक प्रजा-जन निर्धारित नियमानुसार कुछ कुछ अर्थ-दान करता था। उसी धनसे गाँवकी सफाई तथा रोशनीका प्रबन्ध किया जाता, रास्ते ठीक कराये जाते, तालाब बनवाये जाते, आबपाशीके लिये नहरें निकलवाई जातीं, पशुओंके लिये गोचर भूमिका प्रबन्ध किया जाता तथा छोटे छोटे पुस्तकालय स्थापित किये जाते, जिनमें कृषि-विद्या विषयक पुस्तकें तथा पत्र, पत्रिकाएं रक्खी जातीं। उनका पठन पाठन

होता तथा तदनुसार खेतीकी उन्नतिके लिये नये नये उपाय अवलम्बन किये जाते। विदेशोंसे वैज्ञानिक यन्त्र मंगाकर उनका भी प्रयोग किया जाता। रियासतभरमें गाँव गाँव पाठशालाएं भी खोली गई थीं। जहाँ किसानोंके लड़कोंको विना भेद-भावके शिक्षा दी जाती थी। जुलाहों तथा कोरियोंको नवीन ढङ्गसे सूत कातने तथा कपड़े बुननेका भी काम सिखाया जाता था। साथ ही यह भी नियम रखा गया था कि जहाँतक अपने यहाँका बना हुआ कपड़ा मिले, वाहरसे न लिया जाय तथा और दूसरा कच्चा माल भी यथा सम्भव अपनी ही रियासतमें रखकर कार्य्यमें लाया जाय। अस्तु; थोड़े ही दिनोंमें वहाँ आश्चर्य्य-जनक परिवर्तन हो गया। सारी प्रजाको कुछ कुछ पढ़ने लिखनेका भी ज्ञान हो गया। वह अपने ईश्वर-प्रदत्त अधिकारोंको भी समझने लगी। धन-धान्यसे पूर्ण हो पण्डित रामकिशोरजीकी प्रजा रूपी फुलवारी फूल उठी। अव उसका सहस्रों रुपया अदालतमें खर्च न होता। कठिनसे कठिन मामले भी ग्राम्य पंचायतोंमें सरलतासे निपट जाते। पंचोंको दोनों ओरकी तथ्य बातोंका ज्ञान होनेके कारण स्वप्नमें भी अन्यायकी सम्भावना न रहती। चोरीका तो नाम ही उठ गया था। चोर, उचक्के जिनका पहले घृणित-कार्य्य करनेमें जीवन व्यतीत होता था, अव कुछ न कुछ व्यवसाय सीखकर अपना जीवन सुखसे व्यतीत करने लगे थे। इन्हीं अनुपम गुणोंके कारण रामकिशोरजीकी देव तुल्य पूजा होती थी। आपका कार्य्य देखकर अन्य जमींदारोंकी

भी आँखें खुलीं; उनकी कुम्भकर्णी निद्रा भङ्ग हुई। उनलोगोंको भी इस बातका ज्ञान हुआ कि प्रजा केवल मात्र उनके सुखकी सामग्री नहीं है। उसपर अत्याचार करना—उसका खून चूसना, घोर पाप है; सुखके मूलपर कुठाराघात करना है और भावी उत्तराधिकारियोंके लिये विष-वृक्ष बोना है।

ईश्वरकी कृपासे पण्डितजीका गार्हस्थ्य-जीवन भी बड़ा सुखमय है। आपकी सहधर्म्मिणी बड़ी गुणवती, सुशीला तथा उन्नत-विचारकी स्त्री हैं। आपके दो पुत्र तथा एक कन्या हैं। कमला-किशोर और कृष्णकिशोर बड़े होनहार बालक हैं। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र है। कन्या विद्यावती तो साक्षात् देवी-स्वरूपिणी है। इन लोगोंकी शिक्षाके लिये बड़ा उत्तम प्रबन्ध था। कई सुयोग्य अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ नियुक्त थीं। घरमें माता भी उन्हें उपदेश-प्रद पौराणिक आख्यायिकाएँ सुनाया करतीं; जिनका कि उन लोगोंके कोमल हृदयोंपर बड़ा प्रभाव पड़ता। उन्हें अपने पूर्व्वजोंपर श्रद्धा होती।

दूसरा परिच्छेद ।
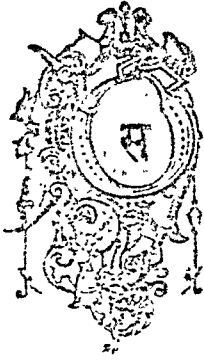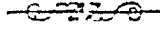
मय जाते देर नहीं लगती। रामकिशोर-जीके दोनों पुत्र विश्व-विद्यालयकी उच्चसे उच्च उपाधि प्राप्तकर पूरे पण्डित हो गये। छोटे भाई कृष्णकिशोरका पहलेहीसे विचार था कि विना वैज्ञानिक शिक्षाका विस्तार हुए देशकी वास्तविक उन्नति कभी नहीं हो सकती। अतएव विदेश जाकर वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करने तथा लौटकर अपनी प्रजामें उसका प्रचार करनेका आपने अपना निश्चय प्रकट किया। पण्डित रामकिशोर पुत्रका सङ्कल्प सुन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सहर्ष अनुमति प्रदान की। माताने भी आदर्श रमणीकी भाँति केवल आज्ञा ही न दी प्रत्युत प्रोत्साहन भी दिया।

कृष्णकिशोर अमेरिका जाकर केलिफोर्नियाँ विश्वविद्यालयमें वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करने लगे और कमलाकिशोर अपने पूज्य पिताके कार्य्यमें हाथ बँटाने लगे। काम बहुत बढ़ गया था। अकेले पण्डित रामकिशोरका सम्हालना असम्भव था। अतएव ग्राम्य पञ्चायतोंका पूरा कार्य्य कमलाकिशोरके जिम्मे किया

गया। वे उसके प्रधान संचालक नियत हुए। प्रजाके कष्टोंका निवारण करना, अत्याचारियोंके अत्याचारसे उसकी रक्षा करना तथा उसकी सुख समृद्धिमें निरन्तर प्रयत्नशील रहना ही आपका काम था।

धीरे धीरे श्रीनगरकी काया पलट गई। व्यवसाय-वाणिज्य तथा विद्या-प्राप्तिका वह प्रधान केन्द्र बन गया। अब वहाँ कई बड़े बड़े स्कूल तथा एक विशाल कालेज बड़े मजेसे चलता था। सरस्वती स्वरूपिणी देवी विद्यावती भी पढ़ लिखकर पूरी पण्डिता हो गई थीं। उनकी देख रेखमें एक उच्च कक्षाकी कन्या पाठशाला भी बड़े महान् कार्य्यका सम्पादन कर रही थी। विद्यावतीके गुणोंका वर्णन करना सूर्य्यको दीपक दिखाना था। उनकी अनुपम सुन्दरता, हृदयकी उच्चता तथा सरलता आचार-विचारकी पवित्रता तथा स्वभावकी मृदुता देखकर भगवती सीताका स्मरण होता था। छोटेपनसे ही इनकी सुशिक्षाका उत्तम प्रबन्ध किया गया था। इन्हें भी पढ़ने लिखनेसे बड़ा चाव था। जैसे जैसे पढ़ती गईं इनकी ज्ञान-पिपासा प्रबल होती गई; विशेषतः हिन्दी साहित्यपर आपका बड़ा अनुराग था। इसी लिये उसपर पूरी सत्ता हो गई। वे पूरी पण्डिता हो गईं। मासिकपत्रोंमें वे साहित्य विषयक गवेषणा-पूर्ण प्रबन्ध लिखतीं, सामयिक काव्य-ग्रन्थोंकी समालोचना करतीं और आवश्यकतानुसार भूलें दिखा-कर उनकी धज्जियाँ उड़ा देतीं। भाषा तो उनकी अनुगामिनी दासी थी। इन्हीं अनुपम गुणोंके कारण वे माता पिताकी जीवन-

सर्वस्व थीं. स्त्री जातिकी आदर्श थीं, प्रजाके लिये भगवती अन्नपूर्णा थीं।

विद्यावतीकी उम्र कोई सत्रह वर्षके ऊपर हो चुकी थी; पर रामकिशोरजीने तबतक उनका विवाह न किया था। हिन्दू जातिमें यह प्रथा बहुत दिनसे चली आती है कि दस या बारह वर्षकी होते न होते कन्याका विवाह कर दिया जाता है। इसके उपरान्त वह माता पिताके लिये भार-स्वरूप हो जाती है। उपरोक्त उम्रके अतिक्रमण करते ही जाति भाई, पड़ोसी तथा संगी साथी कन्याके पिताको धिक्कारने लगते हैं। उसे भाँति भाँतिके कुवाच्य सहने पड़ते हैं। विशेषतः छोटी उम्रमें कन्यादानका महापुण्य लूटनेवाले झूठे विश्वासने तो और भी उपद्रव मचा रखा है। पर रामकिशोरजीका विचार इसके बिलकुल विपरीत था। उन्हें इस थोथे सिद्धान्तपर जरा भी विश्वास न था। वे खूब जानते थे कि बाल-विवाहकी अनिष्टकारिणी प्रथाहीके कारण आज भारतका घर घर लाखों असहाय अबलाओंके करुण-आर्तनादसे गूँज रहा है। उन लोगोंके चलनीके समान छिदे हुए हृदयोंसे निकलती हुई मर्म-भेदिनी आहकी ज्वालासे भारत-भूमिका सर्व्वनाश हो रहा है। इसीसे उन्होंने दृढ़ता-पूर्व्वक स्थिर कर लिया था कि जब-तक उनकी विद्यावती पूर्ण-वयस्क न हो जायगी, उसे भले बुरेका ज्ञान न हो जायगा,—तबतक वे कभी उसका ब्याह न करेंगे। उन्होंने अपनी प्रजाको भी बाल-विवाहके दुष्परिणाम सुझा दिये थे। उनकी जमींदारीभरमें कन्या-पाठशालाओंकी धूम थी।

गया। वे उसके प्रधान संचालक नियत हुए। प्रजाके कष्टोंका निवारण करना, अत्याचारियोंके अत्याचारसे उसकी रक्षा करना तथा उसकी सुख संमृद्धिमें निरन्तर प्रयत्नशील रहना ही आपका काम था।

धीरे धीरे श्रीनगरकी काया पलट गई। व्यवसाय-वाणिज्य तथा विद्या-प्राप्तिका वह प्रधान केन्द्र बन गया। अब वहाँ कई बड़े बड़े स्कूल तथा एक विशाल कालेज बड़े मजेसे चलता था। सरस्वती स्वरूपिणी देवी विद्यावती भी पढ़ लिखकर पूरी पण्डिता हो गई थीं। उनकी देख रेखमें एक उच्च कक्षाकी कन्या पाठशाला भी बड़े महान् कार्य्यका सम्पादन कर रही थी। विद्यावतीके गुणोंका वर्णन करना सूर्य्यको दीपक दिखाना था। उनकी अनुपम सुन्दरता, हृदयकी उच्चता तथा सरलता आचार-विचारकी पवित्रता तथा स्वभावकी मृदुता देखकर भगवती सीताका स्मरण होता था। छोटेपनसे ही इनकी सुशिक्षाका उत्तम प्रबन्ध किया गया था। इन्हें भी पढ़ने लिखनेसे बड़ा चाव था। जैसे जैसे पढ़ती गईं इनकी ज्ञान-पिपासा प्रबल होती गई; विशेषतः हिन्दी साहित्यपर आपका बड़ा अनुराग था। इसी लिये उसपर पूरी सत्ता हो गई। वे पूरी पण्डिता हो गईं। मासिकपत्रोंमें वे साहित्य विषयक गवेषणा-पूर्ण प्रबन्ध लिखतीं, सामयिक काव्य-ग्रन्थोंकी समालोचना करतीं और आवश्यकतानुसार भूलें दिखा-कर उनकी धज्जियाँ उड़ा देतीं। भाषा तो उनकी अनुगामिनी दासी थी। इन्हीं अनुपम गुणोंके कारण वे माता पिताकी जीवन-

सर्वस्व थीं, स्त्री जातिकी आदर्श थीं, प्रजाके लिये भगवती अन्नपूर्णा थीं।

विद्यावतीकी उम्र कोई सत्रह वर्षके ऊपर हो चुकी थी; पर रामकिशोरजीने तबतक उनका विवाह न किया था। हिन्दू जातिमें यह प्रथा बहुत दिनसे चली आती है कि दस या बारह वर्षकी होते न होते कन्याका विवाह कर दिया जाता है। इसके उपरान्त वह माता पिताके लिये भार-स्वरूप हो जाती है। उपरोक्त उम्रके अतिक्रमण करते ही जाति भाई, पड़ोसी तथा संगी साथी कन्याके पिताको धिक्कारने लगते हैं। उसे भाँति भाँतिके कुवाच्य सहने पड़ते हैं। विशेषतः छोटी उम्रमें कन्यादानका महापुण्य लूटनेवाले झूठे विश्वासने तो और भी उपद्रव मचा रखा है। पर रामकिशोरजीका विचार इसके बिलकुल विपरीत था। उन्हें इस थोथे सिद्धान्तपर जरा भी विश्वास न था। वे खूब जानते थे कि बाल-विवाहकी अनिष्टकारिणी प्रथाहीके कारण आज भारतका घर घर लाखों असहाय अबलाओंके करुण-आर्तनाद्से गूँज रहा है। उन लोगोंके चलनीके समान छिदे हुए हृदयोंसे निकलती हुई मर्म-भेदिनी आहकी ज्वालासे भारत-भूमिका सर्व्वनाश हो रहा है। इसीसे उन्होंने दृढ़ता-पूर्व्वक स्थिर कर लिया था कि जब-तक उनकी विद्यावती पूर्ण-वयस्क न हो जायगी, उसे भले बुरेका ज्ञान न हो जायगा,—तबतक वे कभी उसका ब्याह न करेंगे। उन्होंने अपनी प्रजाको भी बाल-विवाहके दुष्परिणाम सुझा दिये थे। उनकी जमींदारीभरमें कन्या-पाठशालाओंकी धूम थी।

छोटे बड़े सभी श्रेणीके मनुष्योंकी बालिकाएँ हाथमें पुस्तकें लिये दिखाई देती थीं। वहाँपर सीना पिरोना तथा गृहस्थीके सभी आवश्यकीय कार्य्योंका अनुभव कराया जाता था। रुचिके अनुसार कुछ विद्यार्थियोंको आयुर्वेदके कुछ आवश्यकीय अङ्गोंका भी ज्ञान कराया जाता था। जिससे वे बड़ी होनेपर परावलम्बिनी न रहें तथा अपनी सन्तानोंके अस्वस्थ होनेपर भूत, प्रेतके फेरमें पड़कर उन्हें केवल झाड़ फूँक तथा देवी-देवताओंके ही भरोसे न छोड़ दें और इस तरह मूर्खता-वश सहस्रों निर्बोध बालकोंका संहार होनेवाला रास्ता बन्द हो। धीरे धीरे बाल-विवाहकी कुरीतियाँ सर्व्व साधारणके भी समझमें आने लगीं। उन लोगोंने भी बिना पूर्ण अवस्था प्राप्त किये कन्याओंका विवाह न करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया।

तीसरा परिच्छेद ।
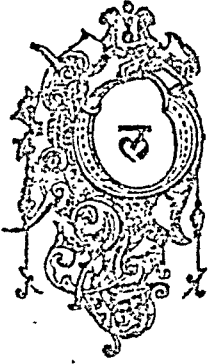
लखनऊके पण्डित गिरिजाशङ्करजी शुक्लकी बड़ी प्रसिद्धि है। आपकी वकालत खूब चलती है। रामकिशोरजीके ये पुराने मित्र हैं। बड़ी घनिष्ठता है। कालेजमें एकही साथ पढ़े थे। छुट्टियोंमें प्रायः वे अपने मित्रके यहाँ श्रीनगरमें ही आकर रहा करते हैं। विद्यावतीका वे बचपनही से बड़ा प्रेम करते। वह भी जितने दिन आप वहाँ रहते प्रायः आपहीके पास रहती।

शुक्लजीके तृतीय पुत्र देवीशङ्करजी इसबार बी० ए० की परीक्षामें सम्मिलित होनेवाले हैं। बड़े कुशाग्र-बुद्धि, धर्म्म-परायण तथा देश-भक्त नवयुवक हैं। वे भी पिताके साथ प्रायः श्रीनगर आया करते थे। विद्यावतीसे बड़ा हेल-मेल हो गया था। दोनों एक दूसरेको बड़ा प्यार करते थे। रामकिशोरजी भी देवीशङ्करसे बड़ा स्नेह रखते थे। वे उनके गुणोंपर मुग्ध थे। उन्होंने बहुत पहलेहीसे मनही मन विद्यावतीका ब्याह देवीशङ्करके साथ करनेका निश्चय कर लिया था। पर किसीको इस बातकी क़ानों क़ान ख़बर न थी।

एक दिन लखनऊ जाकर रामकिशोरजीने शुक्लजीसे अपना भाव व्यक्त किया। शुक्लजीको भला क्या उज्र था ; वे तो पहलेहीसे चाहते थे। उनकी बड़ी अभिलाषा थी कि विद्यावती उनकी पुत्र-वधू हो। वे पूर्णरूपसे सहमत हो गये। अस्तु, विवाह पक्का हो गया। शुभ मुहूर्त भी ठीक कर लिया गया।

चौथा परिच्छेद।
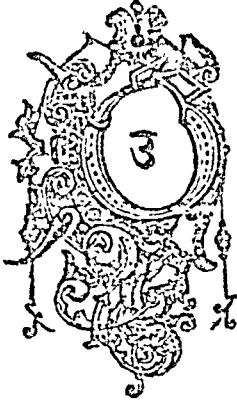
स दिन श्रीनगरकी शोभा वर्णनातीत थी। चारों ओर स्फूर्तिके चिह्न दिखाई देते थे। सभीके मुखपर प्रसन्नता छाई हुई थी। प्रत्येक घर फूल-मालाओं तथा वन्दनवारोंसे सजाया गया था। सफ़ाईका तो वहाँ वैसेही प्रबन्ध रहता था ; पर उस दिन कुछ अधिक विशेषता थी। हर एक रास्ता साफ़ ; कूड़ेका कहीं नाम निशान नहीं। सूर्य्यदेव अस्त हो चुके थे। रोशनीका खूब प्रबन्ध था। सारा गाँव जगमगा रहा था। उस समय बड़े बड़े नगरोंका घूमनेवाला पथिक भी वहाँ आजाता तो उसे भी भौचक्का हो जाना पड़ता। दीवालीमें भी कभी वैसा दृश्य नहीं दिखाई देता।

उस दिन रामकिशोरजीकी प्यारी पुत्री, प्रजावर्गकी भगवती अन्नपूर्णा तथा साहित्य-संसारकी कोकिला देवी विद्यावतीका पाणि-ग्रहण संस्कार था, गार्हस्थ्य जीवनमें प्रवेश करनेका शुभ दिन था। इसी लिये वह साज-सामान था। विद्यावतीके शील स्वभाव, सौन्दर्य्य तथा विद्वत्ताकी बड़ी ख्याति थी। ऐसे अनुपम स्त्री-रत्नको प्राप्त करनेके लिये कौन लालायित न होगी। पर जो बड़-भागी होता है जो उसके योग्य होता है, जिसपर ईश्वरकी अपार कृपा होती है तथा पूर्व्व-जन्मके कृत-कर्म्म जिसके बड़े जबर्दस्त होते हैं,—उसे ही क्षमामयी, दयामयी, विदुषी भार्य्या प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। संसारमें ऐसे सौभाग्यशाली मनुष्य बहुत थोड़े होते हैं। देवीशंकरका भाग्य बड़ा प्रबल था। वे सभी गुणोंके आगार थे। देवी विद्यावतीके वे योग्य पात्र थे। अस्तु; विवाह-कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हुआ। चार दिनतक खूब धूमधाम रही। नित्य नये नये खेल तमाशे हुए। गांवके रईसोंने अलग अलग बारातियोंको आमन्त्रितकर उनका खूब सम्मान किया। अन्तिम दिन सारे गांवकी ओरसे उनलोगोंको प्रीति-भोज दिया गया। बड़ा आनन्द आया। फिर खुशी खुशी विद्यावती श्वसुरालयके लिये विदा की गईं।

पाँचवां परिच्छेद ।

सन्ध्याका समय है। पण्डित गिरिजाशङ्कर-जीके अमीनाबादवाले सुविशाल प्रासादमें खूब चहल पहल है। स्थान खूब सजाया गया है। बिजलीकी रोशनीसे दिनसा प्रतीत होता है। भीतर बाहर आदमी ही आदमी दिखाई देते हैं। अभी थोड़ी ही देर हुई देवीशङ्करकी बारात नव-वधूके साथ प्रत्यावर्तित हुई है। आज देवीशङ्करकी माँकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं। बहुत दिनोंके बाद उनकी आशा फलवती हुई है। न मालूम कितने देवी देवता मनानेके बाद आज उन्हें यह दिन नसीब हुआ है। देवीशङ्कर जब सोलह वर्षके भी न हुए थे, उन्होंने प्रवेशिका-परीक्षा भी न दी थी, तभी-से वे छोटी बहूके मुख-दर्शनके लिये लालायित रहती थीं। पर पण्डित गिरिजाशङ्कर जी उन्नत-विचारोंके व्यक्ति थे। उनका यह विश्वास था कि बाल-विवाहकी नाशकारिणी प्रथाने ही भारतको मटियामेट कर दिया है। इसीकी बदौलत सहस्रों निरपराध अनजान बालिकाओंके भविष्यका संहार होता है। इसीके फेरमें पड़कर कितने ही आशा-धन नवयुवकोंके हृदय-कमलोंपर असमय-में ही तुषार-वर्षा हो जाती है।

देवीशङ्करको पिताकी शिक्षाने पहलेहीसे दृढ़ कर दिया था। विवाहकी चर्चा करते ही वे बड़े रुष्ट होते। उनका यह दृढ़ सिद्धान्त था कि किसी भी नवयुवकके लिये विना सम्पूर्णतः विद्योपार्जन किये तथा अपनी गृहस्थीके सञ्चालनके लिये यथेष्ट धन सञ्चय किये वैवाहिक-बन्धनमें बँधना आत्मघात करना, भावी आशाओंपर पानी फेरना तथा समाजका अनिष्ट करना है। सरल-हृदया माता यह न समझतीं। छोटी सन्तानपर माताका विशेषतः अनुराग हुआ करता है। वे समझतीं कि उनके जीवन-का सन्ध्या-काल उपस्थित हो चुका है। यदि वे देवीकी बहूको देखलें तो उनका हृदय शीतल हो जाय उनकी अन्तिम इच्छा पूरी हो जाय। ईश्वरकी अनुकम्पासे उन्हें वह दिन देखनेको मिल गया। इसीसे उनकी खुशीका ठिकाना नहीं।

पास पड़ोसकी स्त्रियोंका मेलासा लग गया। नव-वधूके मुख-चन्द्रके दर्शनकर सभी प्रसन्न होतीं। विद्यावतीके अभूत-पूर्व्व सौन्दर्य्यकी चर्चा घर घर फैल गई। कोई कोई आपसमें कहतीं—'बहन, बहू क्या है, मानो स्वर्गकी अप्सरा है। मृगीके समान कैसी बड़ी बड़ी रसीली आँखें हैं। मुस्करानेमें मानों मुँहसे मोतियोंकी लड़ी निकली पड़ती है। कैसे गुलाबी रंगके गोल कपोल हैं, कैसे अरुण अधर हैं। बोलनेमें मानों फूल झड़ते हैं। उसकी मन्द मन्द चालसे ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं उसके कोमल पैरोंमें ठेस न लग जाय, इस भयसे पृथ्वी दबसी जाती है। देवीकी माँ अवश्य ही बड़-भागिनी हैं; जिन्हें

ऐसा अनुपम वधू-रत्न मिला है। वास्तवमें विद्यावती अन्धेरे घरकी चाँदनी थीं। उनका जैसा रूप-सौन्दर्य्य था, स्वभाव भी वैसा ही विनम्र था।

छठा परिच्छेद।

ड़े घरोंमें प्रायः जैसा हुआ करता है, शुक्ल-जीके यहाँका भी वही हाल था। उनकी गृहस्थीका प्रबन्ध बड़ा अव्यवस्थित था। जहाँ जो वस्तु पड़ी होती, वहीं वह पड़ी रहती। यदि यहाँसे कोई वस्तु, कोई उठाये लिये जाता है, तो वहाँ कोई चीज़ बिना देख भालके नष्ट हो रही है। नौकरों चाकरोंका राज्य था। बुढ़िया बेचारी अकेले क्या क्या करती। इतना रुपया पैसा व्यय होता; पर समयपर किसी वस्तुकी आवश्यकता होती तो न मिलती। कार्य्य-कुशल पण्डित रामकिशोरजीकी कन्या तथा आदर्श स्त्री-रत्न द्वारा पालिता देवी विद्यावतीसे भला यह कैसे देखा जाता। अपने विनीत स्वभाव तथा

कार्य्य-चतुरतासे उन्होंने सासुको थोड़े ही दिनोंमें वश कर लिया था। विद्यावतीने गृहस्थीका सारा बोझ अपने ऊपर उठा लिया। देवीशङ्करकी माँका काम हलका हो गया। फिर क्या था, थोड़े ही दिनोंमें सारा प्रबन्ध नियमानुकूल हो गया। सब काम-काजकी देखभाल वे स्वयं रखतीं। क्या मजाल कि रत्तीभर भी कोई वस्तु इधरसे उधर हो जाय या नौकर चाकर उठा ले जायँ। पर इसपर भी वे सब बड़े प्रसन्न रहते; उनपर पूरी श्रद्धा रखते, उन्हें देवी-स्वरूपिणी समझते। इतने बड़े विशाल भवनमें जहाँ कहीं कहीं महीनों झाड़ू तक न पड़ती थी वहाँ सर्वत्र चाँदनी-सी छिटकी रहती है। कहीं एक तिनका भी ढूढ़नेसे नहीं मिलता। सभी वस्तुएं नियमानुसार निर्धारित स्थानमें रक्खी रहती हैं। प्रत्येक नौकरका काम अलग अलग बँटा हुआ था। किसीके हाथमें घरकी सफाईका काम, किसीके हाथमें बाजारका काम और किसीको भाण्डारीका काम सौंपा गया था। सबके अलग अलग स्थान नियत थे। जिस समय जिस वस्तुकी आवश्यकता पड़ती उसी समय वह उपस्थित की जाती। सासु श्वसुर पुत्रवधूकी कार्य्य-कुशलतासे बड़े तुष्ट थे। उन्हें अब गृहस्थीके किसी झंझटसे कुछ मतलब न था। उनकी आवश्यकताएं तुरन्त पूरी की जातीं। रसोईकी देखभाल विद्यावती स्वयं करतीं। पाक-विद्या-विषयक पुस्तकें उन्होंने खूब पढ़ी थीं और उनका व्यावहारिक ज्ञान भी उन्हें यथेष्ट था। उसीके अनुसार नाना प्रकारके नित्य नये नये व्यञ्जन तैयार करातीं। जिससे

सभी उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करते। सुव्यवस्थाके कारण व्यय भी कम होता था। अतएव बँधे हुए खर्चसे जो बचता, उससे वे गरीब दुखिया अनाथ बालिकाओं तथा असहाय विधवाओं-की सहायता करतीं। नौकरोंको कार्य्य-कुशलताके लिये पारितोषिक देतीं। इसी लिये वे विद्यावतीकी भक्ति करते। उन्हें साक्षात् अन्नपूर्णा समझते।

अन्तःपुरके ही एक विशाल कमरेमें आपने एक पुस्तकालय बना रक्खा था। जहाँ काव्य, इतिहास, पुराण, आदि सभी प्राचीन तथा अर्व्वाचीन हिन्दी तथा संस्कृतके सद्ग्रन्थोंका संग्रह था। घरके कामसे निपटकर वे वहीं पुस्तकाध्ययन करतीं तथा पास पड़ोसकी बालिकाओंको जीवनोपयोगी सुशिक्षा प्रदान करतीं। भगवती विद्यावती उन लोगोंको बड़े चावसे सभी विषयोंकी शिक्षा देतीं। उनका विश्वास था कि बालिकाएँ ही भावी भारतकी आशा हैं। उन्हींपर उसकी उन्नति अवलम्बित है। इनका सुधार हो जानेसे क्या क्षमता है किसी मानवी-शक्तिमें जो पुण्य-भूमि भारतको एक क्षण भी अधोगतिमें पड़ा रख सके!! इसी आदर्शको लेकर उन्होंने यह व्यवस्था की थी।

देवीशङ्कर विद्यावतीको पाकर अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझते थे। जबसे वे कुछ बड़े हुए थे और भले बुरेका ज्ञान हो चला था, तभीसे उनकी यह मनोकामना थी कि वे किसी ऐसी शिक्षिता रमणीका पाणि-ग्रहण करें, जिसमें सहधर्म्मिणी होनेकी पूरी योग्यता हो, जो सुख दुःखकी सङ्गिनी हो, धर्म्मपथ-

पर चलनेमें सहायक हो, अधर्मसे बचानेके लिये अंकुश हो, सच्ची गृह-स्वामिनी हो, तथा हृदयकी अधिष्ठात्री देवी हो। विद्यावतीमें यह सभी गुण विद्यमान थे। पिताके साथ जब कभी वे श्रीनगर जाते तो विद्यावती उनका बड़ा प्यार करतीं, उन्हें अपनी माँके पास ले जातीं और किसी वस्तुको स्वयं खानेसे पहले उन्हें खिलातीं। जब वे स्नान करते तो नौकरके उपस्थित रहते हुए भी वे स्वयं अपने हाथसे उनकी धोती देतीं। पर जब वे कुछ बड़ी हुईं तो उनका वह भाव ही बदल गया। देवीशङ्करके श्रीनगर जानेका हाल सुनकर न मालूम क्यों उनके मनका भाव सलज्ज हो जाता। वे उनके पास न जातीं। उन्हें देखते ही छिप जातीं, पर बिना देखे चैन भी न पड़ता,—अतएव लुक छिपकर देखतीं। देवीशंकरको उनका यह भाव देखकर बड़ा आनन्द आता। वे मन ही मन विद्यावतीपर मुग्ध थे। उन्हें वे साक्षात् लक्ष्मी समझते। उनकी बड़ी इच्छा थी कि विद्यावती उनकी हों। पर अपना यह भाव वे बड़ी खूबीसे छिपाये रहते। उनका यह विश्वास था कि ईश्वर उनकी मनोवांछा पूर्ण करेगा। समयानुसार वही हुआ। देवीशङ्करकी इच्छा पूरी हुई। विद्यावतीको पाकर वे कृतकृत्य हुए। उनके आशा-वृक्षमें फल लगे।

सातवां परिच्छेद ।
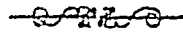
वीशङ्कर प्रयागके म्योर सेण्ट्रल कालेजकी चतुर्थ वार्षिक श्रेणीमें अध्ययन करते थे। वे जितने विलक्षण बुद्धि सम्पन्न थे, उतने ही कर्म्मशील भी थे। सहपाठियोंपर उनकी सत्ता थी। अध्यापकोंमें बड़ा सम्मान था। पर इधर कुछ दिनोंसे उनका चित्त कुछ चलायमान रहता है। पढ़नेमें मन ही नहीं लगता। कालेज जानेकी इच्छा ही नहीं होती। निरन्तर गम्भीर चिन्तामें निमग्न रहते हैं। छोटीसे छोटी छुट्टीमें घर पहुँच जाते हैं। विद्यावतीपर उनका अनुराग था। उनके सामने वे संसारको भूल गये थे। उन्हें उनकी एक एक बात प्यारी लगती। उनकी यही इच्छा रहती कि वे उनकी आँखोंके आगेसे एक क्षण भी न हटें। विद्यावतीका भी उनपर कुछ कम अनुराग न था। ऐसा सुन्दर, विद्वान तथा देशभक्त पति पाकर किसे आनन्द न होगा! उनकी अन्तरात्मा तो यही चाहती थी कि वे एक क्षण भी उनकी पलककी ओट न हों। पर बुद्धिमती विद्यावती बड़ी खूबीसे अपने भावको छिपाये रहतीं; स्वामीके स्वभाव-परिवर्तनको वे ताड़ गई थीं। इसे वे बड़ा हानिकारक समझतीं विद्याध्ययनके मार्गका बड़ा भारी कण्टक

समझतीं। इसी लिये वे इच्छा रखते हुए भी कभी अपने हृदयका प्रेम-पट न खोलतीं।

दशहरेकी छुट्टी केवल चार दिनकी थी। पर दो तीन दिन अधिक हो जानेपर भी देवीशङ्कर प्रयाग नहीं गये। इससे विद्यावती मन ही मन बड़ी दुःखित हुईं। वे बैठे बैठे सोचने लगीं 'न मालूम इन्हें क्या सूझी है जो आजकल पढ़ने लिखनेमें मन नहीं लगाते। मेरे ही कारण इनमें यह परिवर्तन हुआ है। थोड़े ही दिन पहले इनकी प्रशंसाके पुल बँधते थे। पर अब लोग बदनाम कर रहे हैं। इसपर भी इन्हें चेत नहीं होता। ईश्वर! इन्हें सुबुद्धि दो, जिसमें ये कर्त्तव्य-च्युत न हों। यही सोचते सोचते विद्यावतीके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। इतनेहीमें अचानक देवीशङ्करने कमरेमें प्रवेश किया। आते ही उनकी दृष्टि विद्यावतीके मुखमण्डलपर पड़ी। उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उनके हृदयपर बड़ा धक्का लगा। विद्यावतीने बड़ी शीघ्रता-से आँसुओंको पोंछ तथा अपने वास्तविक भावको छिपाकर मुस्कराते हुए अपने कोमल करोंसे स्वामीके दोनों हाथ पकड़ लिये। देवीशङ्करने उन्हें हृदयसे लगाकर बड़ी व्याकुलतासे पूँछा—'प्रिये, तुम्हारे मुख-कमलपर विषादकी छाया क्यों दिखाई देती है? तुम्हारे कोमल कपोलोंपर अश्रु चिह्न दिखाई देते हैं, तुम्हें कौनसी मानसिक पीड़ा है? मुझे इसका कारण शीघ्र बताओ; जिसे दूर करनेका मैं प्रयत्न करूँ। विद्यावतीने कहा—प्राणनाथ! नहीं, कुछ तो नहीं। योंही बैठे बैठे भारतेन्दुजीका

सत्य हरिश्चन्द्र पढ़ रही थी। उन्होंने महारानी शैव्याकी विपत्ता-वस्थाकी करुणा कहानी कितनी मार्मिकताके साथ वर्णन की है,—उसे ही पढ़ते पढ़ते हृदयमें विषाद छा गया है। इसीसे सम्भवतः मैं आपको कुछ खिन्नसी दिखाई देती हूँ। पर सच्चा भाव क्या कहीं छिपाये छिपता है। देवीशङ्करने समझ लिया था कि इसमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। अतएव बारबार वास्तविक बात पूँछनेका हठ किया। अब तो विद्यावतीसे न रहा गया। वे उद्वेगको न रोक सकीं। उन्होंने डबडबाई हुई आँखोंसे कहा—"आर्य्य पुत्र, आप मेरे प्रभु हैं और मैं आपकी दासी। आपही मेरे परम गुरु हैं। संसारमें मेरे लिये स्वर्ग-नरक, देवी, देवता, ईश्वर तथा तीर्थ सब कुछ आपही हैं। हिन्दू-कुलकी स्त्रीके लिये पति ही सर्वस्व है। उसे पति विना स्वर्ग भी निविड़ वनके समान है। पति ही उसकी जीवन-ज्योति है। उसके विना उसके लिये सब अन्धकार ही अन्धकार है। पर सच्ची सहधर्मिणी भी वही है, जो स्वामीको धर्म्म कार्य्योंमें सहायता दे; कण्टकाकीर्ण पथको सुगम करे। देव, मुझमें इतनी बुद्धि नहीं कि मैं किसी प्रकारकी आपको सलाह दूँ। किन्तु जब मैं आपको कर्त्तव्य-पथसे कुछ हटते देखती हूँ तो मुझे मार्म्मिक वेदना होती है। लोगोंको जब यह कहते सुनती हूँ कि देवी पहले अध्ययन-में सुपटु थे और देश सम्बन्धी कार्य्योंमें सदा अग्रगण्य रहते थे, पर अब उनकी मानसिक स्थिति परिवर्तित हो गई है;—तो हृदय शतधा विदीर्ण हो जाता है। प्रभो! क्या-सांसारिक मोहमें फँस-

कर सच्चे कर्मवीर कभी अपने संकल्पसे भ्रष्ट होते हैं? क्या आपका धर्म्म नहीं है कि आप अपना अध्ययन-कार्य्य उत्तमता-पूर्व्वक समाप्त कर लें और फिर दासीको सहायक रूपसे साथ लेकर देव-वन्दिता जन्मभूमिके उद्धारका संकल्प करें?"

इतना कहते कहते विद्यावतीका गला रुंध गया। उनके गम्भीर वचनोंका स्वामीपर बड़ा प्रभाव पड़ा। देवीशङ्करकी मोह-निद्रा भङ्ग हुई। हृदयका अन्धकार दूर हो गया। उन्होंने प्रेम-पूर्व्वक विद्यावतीको छातीसे लगा लिया और कांपते हुए हाथों-से उनका मुखोत्तोलनकर कहा—"देवी, तुम धन्य हो और धन्य हैं वे माता पिता, जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया। भगवान तुम्हारीहीसी देवियां देशमें उत्पन्न करे; जिनकी पुकारसे सोती हुई भारत-सन्तानें जग पड़ें। तुम क्षमामयी—दयामयी—हमारे हृदयकी वास्तविक अधिष्ठात्री देवी हो।" देवीशङ्कर और भी कुछ कहा चाहते थे कि विद्यावतीने स्नेह-पूर्व्वक अपने दोनों हाथ उनके गले-में डालकर कहा—"प्रभो, बहुत हो चुका। इस दासीके प्रति आपके मुखसे यह शोभा नहीं पाता।"

उसी दिन शामकी गाड़ीसे देवीशङ्कर प्रयाग चले गये। परीक्षाके केवल तीन महीने बाक़ी थे। न मालूम कहाँकी स्फूर्ति आ गई। कर्त्तव्य-पूर्तिकी ऐसी धुन समाई कि खाना-पीना, सोना, खेलना, कूदना सभी भूल गया। उनके कानोंमें विद्यावतीकी वह ओजस्विनी आवाज़ बराबर गूँजा करती। उनकी स्पष्ट युक्तिका स्मरणकर देवीशङ्करके हृदयमें द्विगुण उत्साह उत्पन्न होता।

आठवां परिच्छेद ।
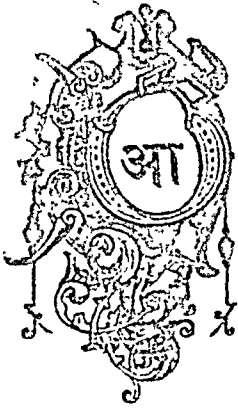
र्य्य विक्रमादित्यके स्मृत-चिह्न नवीन सम्वत्सरके शुभागमनके साथ ही चैत्र मासका प्रारम्भ हुआ । गरमी कड़ाकेकी पड़ने लगी । भगवान मरीचिमाली प्रचण्डतर रूप धारणकर निर्दयता पूर्व्वक अग्नि वर्षा करने लगे । शरीरको झुलसानेवाली उत्तप्त वायुके झोकोंसे पशु-पक्षीतक व्याकुल हो उठे । ऐसे ही समय देवीशङ्कर परीक्षासे निवृत्त होकर घर लौटे । पिताकी आज्ञा हुई कि वे कुछ दिन वैकुण्ठपुरमें जाकर रहें । यह स्थान विठूरके निकट पुण्य-श्लोका भगवती जाह्नवीके तटपर बसा हुआ है । यह बड़ा रमणीक ग्राम है । यही देवीशङ्करकी जन्म-भूमि है । कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंका आवास स्थान है । खूब उन्नतावस्थामें है । यह देवीशङ्करके पिता पण्डित गिरिजाशङ्करजीके विशेष उद्योगका फल है । बड़े बड़े नगरोंकासा प्रबन्ध है । प्रजा सुखी है । किसीको किसीका स्वप्नमें भी भय नहीं । अत्याचारियोंके अत्याचारका नाम निशान नहीं । सभी कोई स्वच्छन्द हैं । गाय और सिंह एक घाट

पानी पीते हैं। अंग्रेजी, संस्कृत तथा हिन्दीकी सुशिक्षाका भी उत्तम प्रबन्ध हैं। दो एक कन्या-पाठशालाएँ भी हैं। इसी लिये यहाँ नवीन जागृतिके चिह्न दिखायी देते हैं।

अपने रहनेके लिये भी पण्डितजीने एक बड़ा ही रमणीक स्थान बनवाया था। वहाँ सुखकी सभी सामग्री प्रस्तुत थी। गङ्गा तटपर बने हुए इस नन्दन-काननकी शोभा वर्णनातीत थी। यह कोई आध मीलके सुविस्तृत मैदानमें ऊँची ऊँची प्राचीरोंसे घिरा हुआ था। भीतरकी शोभा बड़ी मनोहारिणी थी। सारी समतल भूमि हरी हरी दूबसे आच्छादित थी। उसपर नाना प्रकारके सुगन्ध-युक्त नेत्र-रञ्जक पुष्पोंकी क्यारियाँ तथा सुस्वादु फलोंके वृक्षोंकी कतारें बड़ी सुहावनी प्रतीत होती थीं। बीच बीचमें आने जानेके लिये पगडंडियाँ बनी हुई थीं। जिनपर सुर्ख रङ्गकी कंकड़ियाँ बिछी थीं। उत्तरकी प्राचीरसे मिला हुआ सुविशाल प्रासाद था। उसके पिछवाड़ेसे जह्नु-तनया कलकल नाद करती हुई प्रवाहित होती थीं। उनकी उत्ताल तरङ्गें इसी दुर्गोपम प्रासादके साथ टकराया करतीं। इसे बनानेके लिये बड़ी दूर दूरके कारीगर बुलाये गये थे तथा भारतके एक प्रसिद्ध चित्रकारने इसका मानचित्र तैयार किया था। बनावट अभूत-पूर्व्व थी। सारे मकानमें श्वेत संगमर्मरकी फर्श थी तथा दीवालोंमें रङ्ग बिरङ्गे चमकदार पत्थरोंकी गोट लगी हुई थी। दरवाजे प्रायः सभी शीशेके थे। दूसरे खण्डमें बैठकके लिये एक विशाल कमरा था। इसकी सजावट बड़ी अद्भुत थी; गुलाबी

रङ्गसे पुती हुई दीवालोंपर भड़कीली बेलें तथा गुलदस्ते बड़ी चतुराईसे चित्रित किये गये थे। छतमें सुनहला काम किया गया था। बीचमें तीन बड़ी बड़ी भाड़ें लगी हुई थीं। रात्रिके समय उनके प्रकाशसे सारा कमरा जगमगा उठता। छत चमकने लगती। दीवालोंपर बड़े बड़े महात्माओंके चारु चित्र भी शोभा पाते थे। कहींपर आर्य्य-जातिकी जीवन-ज्योति, राजनीतिके आदि गुरु, मङ्गल-मूर्त्ति भगवान् कृष्णचन्द्र माथेपर मुकुट बाँधे, एक हाथमें चक्र-सुदर्शन धारण किये शान्त और गम्भीर भावसे पाण्डव-श्रेष्ठ प्रतापी पार्थको कर्म्मयोगके गूढ़ रहस्य समझा रहे हैं; कहींपर आदर्श ब्रह्मचारी भीष्मदेव अपनी विशाल भुजाएँ उठाये आजन्म ब्रह्मचर्य्य-व्रत अवलम्बनकी प्रतिज्ञा करते दिखाई देते हैं। एक ओर आधुनिक भारतके प्राण स्वामी विवेकानन्द महाराज अपने परम-गुरु परमहंस रामकृष्णदेवकी ध्यानावस्थित मूर्त्तिके सामने हाथ जोड़े खड़े हुए किसी आन्तरिक शक्तिका अनुभव कर रहे हैं और दूसरी ओर वैदिक साहित्यके प्रसिद्ध उद्धारक भारत-भाग्यके भविष्य वक्ता प्रतिवादि-भयङ्कर दयानन्दकी पवित्र मूर्त्ति शोभा पाती है। इसी लिये इस कमरेमें प्रवेश करते ही हृदयमें स्वर्गीय भावोंका सञ्चार होता है।

इसी उद्यानके भीतर कुछ दूर हटकर एक बड़ा सरोवर था। नाना प्रकारके आमोद-प्रद लता-गुल्म-विशिष्ट वृक्षोंसे घिरा होनेके कारण यह बड़ा सुहावना प्रतीत होता था। पानीके भीतर लाल, नीले तथा श्वेत कमल बड़े अच्छे लगते थे। प्रातःकाल जिस

समय बाल भास्करकी सुनहली किरणें वृक्षोंपर पड़तीं, उस समयका दृश्य बड़ा मनोहर होता।

पिताकी आज्ञासे देवीशङ्कर विद्यावतीको लेकर इसी स्वर्गोपम उद्यानमें आकर स्वच्छन्दता-पूर्व्वक अपनी छुट्टीके दिन विताने लगे। विद्यावतीकी चिर-अभिलषित-वाञ्छा पूरी हुई। अवतक इस भयसे कि कहीं स्वामीकी पढ़ाईमें वाधा न पड़े, इन्होंने कभी उनसे खुले दिलसे वातही न की थी। अब कोई वाधा न रही। अतएव खूब आमोद-प्रमोदमें समय व्यतीत होने लगा। दिन जाते देरी ही न लगती। सूर्य्य निकलनेके पहले नित्य-कर्म्मोंसे निवृत्त होकर प्रायः नित्य ही युगुल-दम्पति उपरोक्त सरोवरमें मयूरके समान वने हुए वजरेमें वैठकर सुन्दर समीरके साथ अठलानेवाले कुमुदवृन्दके वीचसे होते हुए जल-विहार किया करते। विद्या-वतीको संगीतसे वड़ा प्रेम था। गीत गोविन्द तथा सूरसागरके अनेकों गीत उन्हें कण्ठस्थ थे। वीणा वजानेमें भी वे वड़ी पटु थीं। उन्हें संगीतकी शिक्षा भी दी गई थी। बजरेमें वैठ वीणा वजाते हुए कोकिल-कण्ठी विद्यावती जिस समय काव्य-जगत्के चक्रवर्ती सम्राट जयदेव तथा सूरदासकी सरस सुकोमल-पदावली अलापतीं, उस समय वायु-मण्डल उनकी वीणा विनिन्दित मधुर ध्वनिसे गूँज उठता। सामने वैठे हुए देवीशङ्करजीको सुध-बुध भूल जाती। काञ्चनवर्ण पीत वसन-धारिणी भगवती विद्यावती हाथमें वीणा लिये स्वर्गसे उतरी हुई साक्षात् भगवती वीणापाणि ही प्रतीत होतीं। नवोदित-बाल-भास्करकी किरणें उनके मुखपर

पड़कर उनकी सुन्दरता द्विगुणित कर देतीं; जिससे प्रसन्न होकर कमलदल मानो खिलखिला पड़ते। पुनः भोजनादिसे निवृत्त हो अन्य आमोद प्रमोद होते। सारा समय प्रायः साहित्य तथा संगीतकी चर्चामें ही कट जाता।

इस प्रकार कई महीने व्यतीत हो गये। परीक्षा-फल निकलनेका समय निकट आ गया। देवीशङ्करको इसकी चिन्ता न थी। उनका दिल पूरा था। अपनी सफलतापर उनका पूरा विश्वास था। पर समय जितना ही निकट आता जाता, सरल-हृदया विद्यावतीका उद्वेग उतना ही बढ़ता जाता। वे निरन्तर ईश्वरसे स्वामीकी सफलताकी कामना किया करतीं। एक दिन एकान्तमें बैठे सोचते सोचते सहसा उनके मुँहसे निकल पड़ा—"माता सरस्वती, इस गरीबिनीकी लाज तुम्हारे हाथ है। देखना, कहीं दासीके मुखपर कलङ्क—कालिमा न लग जाय। भगवती वीणापाणे! लोकापवादसे मेरी रक्षा करना। यही कहते कहते वे गम्भीर चिन्तामें निमग्न हो गईं। उन्हें तन मनकी सुध न रही। यकायक दरवाजा खुला। हाथमें पीला लिफाफा लिये देवीशङ्करने हँसते हँसते भीतर प्रवेश किया। उन्होंने उसे बड़े प्रेमसे विद्यावतीको दे दिया। विद्यावतीका हृदय उछलने लगा। उन्होंने कम्पित करोंसे उसे खोलकर पढ़ा। प्रसन्नताके मारे वे उछल पड़ीं। मुँहसे बोल न निकला। नेत्रोंसे प्रेमाश्रु निकल पड़े। वे स्वामीके वक्ष-स्थलपर अपना मस्तक रख उनके मुँहकी ओर एकटक देखने लगीं। देवीशङ्करने प्रेम

पूर्वक उन्हें छातीसे लगाते हुए कहा--"हृदयेश्वरी, यह दिन हमें तुम्हारी ही बदौलत नसीब हुआ है। भगवान् यदि तुम्हारीसी देवियां इस देशमें उत्पन्न करें तो फिर इसके उद्धारमें कुछ भी विलम्ब न लगे। विद्यावतीने मुस्कराते हुए कहा--इस प्रसन्नताके अवसरपर मुझे क्या मिलेगा ?

देवी--प्रिये, तुम मुझे क्यों लज्जित करती हो। तुम हमारे प्राणोंकी सर्वस्व हो। यह शरीर ही तुम्हें अर्पण है।

विद्यावती। प्रभो, आप जो कुछ कहते हैं, वह सब आपकी कृपा है। पर इस प्रसन्नताके अवसरपर कुछ मिलना अवश्य चाहिये। मुझे वचन दीजिये कि अवसर पड़नेपर मैं उसे माँग सकूँ।

देवीशङ्कर कुछ समझ न सके और बोले--"अच्छा ऐसा ही सही।

विद्यावती--केवल कहनेहीसे काम न चलेगा। मुझे अभि-वचन दीजिये।

देवीशङ्करने हँसते हँसते कहा--अच्छा, मैं तुम्हें वचन देता हूँ।

नवां परिच्छेद।

आषाढ़का महीना बीत चुका था, पर इन्द्रदेवने अब भी कृपा न की थी। गरमी दिनपर दिन प्रचण्ड रूप धारण करती जाती थी। तालाब, नदी, नाले सब सूखे पड़े थे। मनुष्य, पशु पक्षी सब व्याकुल थे। बेचारे दीन हीन किसानोंकी दशा बड़ी शोचनीय थी। घरमें खानेके लिये अन्न नहीं, पशुओंके लिये चारा नहीं। कुछ रूखा सूखा खाकर चाहे वे किसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत भी कर लेते, पर पशुओंकी रक्षाका कोई उपाय न था। इससे वे औरभी अधिक अधीर हो उठे। बड़ी भारी विपत्तिका सामना था। कोई किसीसे बाततक पूँछनेवाला न था। एक तो आधा पेट भोजन, दूसरे भूखके मारे उन्हींकी आँखोंके सम्मुख उनके पशु-धनका विनाश, ऊपरसे यमराज रूपी हृदय हीन अर्थ-पिशाच भू स्वामियोंका भूमि कर वसूल करनेवाला अत्याचार, असह्य हो उठा। गाँवके गाँव उजाड़ होकर श्मशानमें परिणत होने लगे। जहाँ कभी हरी हरी घासकी हरियालीके ऊपर कोमल कोमल पत्तियोंसे लहलहाते हुए रसाल तरुवर श्रान्त-पथिकोंको छाया प्रदान करते थे, वहाँ

आज कोसोंतक हरियालीका नाम नहीं दिखाई देता। बिना पत्तोंके केवल ठूँठे वृक्ष देख पड़ते थे। आश्रय-हीन बेचारी चिड़ियां न मालूम कहाँ चली गई थीं।

जहाँतक बना उन लोगोंने सब अत्याचार तथा असुविधाएँ सहन कीं। अपना सर्वस्व बेंच डाला,पर उससे भी पूरा न पड़ा। क्योंकि, बेचनेवाले सभी थे; खरीदनेवाला कोई नहीं। जब कोई उपाय न रहा तब बहुतोंने अपनी प्यारी मातृ-भूमिका ही त्याग कर दिया। बहुतेरे तो चले गये और जो रह गये उन लोगोंमें अधिकांश वृक्षोंके पत्ते तथा अन्य भक्ष्याभक्ष वस्तु खानेके कारण रोगाक्रान्त हो अनाथवत् प्राण विसर्जन किये। किसी किसी घरमें तो पानीतक देनेवाला कोई न रहा। प्रलयसा मचा हुआ था; पर इन गरीबोंको कोई आश्वासनतक देनेवाला न था।

विद्यावती उन दिनों वैकुण्ठपुरमें ही थीं। यहांपर भी उनका सबसे हेलमेल हो गया था। दुखी सुखी सभी उनके पास आते और आवश्यकता पड़नेपर यथायोग्य सहायता पाते। दीन दुखियोंकी ओर उनका विशेष ध्यान रहता; उन लोगोंका वे विशेष आदर करतीं। इस घोर दुर्भिक्षके समय झुण्डकी झुण्ड किसानोंकी स्त्रियां अपनी करुण-कहानी सुनातीं; जिसका विद्यावती बड़ी उत्कण्ठासे अनुभव करतीं।

उस दिन किसी किसानकी असहाय स्त्रीकी करुणा-पूर्ण कहानी सुनकर उनका हृदय और भी पिघल गया। उसको कमाईके साधन गाय, बैल चारे बिना मर चुके थे। भूखके मारे अबोध

बच्चे अस्थि चर्मावशिष्ट हो रहे थे। नेत्र-विहीन असहाय पति उसीपर अवलम्बित था। बेचारी अभीतक अपने ही बलपर अपनी गृहस्थी चलाती थी। पर इस दुर्भिक्षने उसे एकदम अपङ्ग कर दिया। उसे कोई सहारा न था। किसी बड़े आदमीके यहां चाकरी कर किसी प्रकार अपना पेट पालती थी। पर दुर्दैवसे वह भी न देखा गया। उपज न होनेके कारण वह भूमि कर न दे सकी थी। अर्थ-पिशाच नर-पशु भू-स्वामीके नीच कर्म्मचारियोंने उसे खूब सताया। उसके अन्धे पतिपर बेंत प्रहार किये गये। धूपमें खड़ाकरके कोड़े लगाये गये। जब किसी प्रकार निस्तार न मिला, तब उसने अन्नपूर्णा भगवती विद्यावतीकी शरण ली और रो रोकर अपनी सारी व्यथा वर्णन की। सरलताकी मूर्ति विद्यावतीका हृदय उसकी दुःख-वार्ता सुनकर शतधा विदीर्ण हो गया और उनकी आँखोंसे अश्रु-प्रवाहित होने लगा। उन्होंने उसे ढाढ़स बँधाया और आवश्यक धन प्रदानकर विदा किया।

विद्यावती मन ही मन व्याकुल हो कहने लगीं--"हाय! इन अनाथोंका कोई सहायक नहीं। वह देश क्यों न रसातल जाय--जहाँके अन्न-दाताओंकी ऐसी दुरवस्था हो? धिक्कार है उन धनवानोंको, जो नगरोंमें बैठे जिनकी कमाईके बलपर गुलछर्रे उड़ावें, उन्हीं अपने भाइयोंकी दीन-दशाकी स्वप्नमें भी चिन्ता न करें। जिस देशके शिक्षित, नेतानामको कलङ्कित करते हुए मोटरोंपर चलनेके सिवाय जमीनपर पैर न रक्खें तथा गरम लू लग जानेके भयसे बाहर न निकल, दोमंजिले मकानोंमें खसकी

इन्द्रियोंकी सुन्दर सुवाससे ही मस्त रहें, भला उस अभागे देशका ऐसा अधःपात न होगा तो कहाँ का होगा? वे इसी सोचमें पड़ी हुई थीं कि, देवीशङ्करने आकर उनके हाथमें एक पत्र दिया। विद्यावतीने उसे पढ़ा। पढ़ते ही उनका दुःख और भी उमड़ आया। वे अपनेको सम्हाल न सकीं और दुःख-विह्वल हो पतिके वक्ष-स्थलपर मस्तक रखकर अवसन्नसी हो गईं। देवीशङ्कर इसे कुछ भी समझ न सके। जिसके लिये मनुष्योंको न मालूम कहाँ कहाँकी धूल-छाननी पड़ती है, कितनी कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं और जिसे प्राप्त करनेवाला बड़ा भाग्यशाली समझा जाता है; उन्हें आज बिना प्रयास ही वही सम्मानास्पद राजकीय पद प्राप्त हो रहा था। उक्त पत्रमें वही सुसंवाद था। उसे पढ़कर प्रसन्न होना चाहिये था। पर हुआ इसके एकदम विपरीत। इसीसे उन्होंने सशंक-चित्त हो कहा—"प्रिये आज तुम इतनी अधीर क्यों हो रही हो? तुम्हें ऐसी कौनसी मानसिक वेदना हुई? शीघ्र बताओ उसे दूर करनेका मैं प्रयत्न करूँ। तुमने मुझे सदैव कुसमयमें ढाढ़स बँधाया है; अपने गम्भीर वचनों-से हमारे चञ्चल चित्तको शान्त किया है। फिर आज इस शुभ-सम्वादको सुनकर प्रसन्न होनेके बदले तुम इतनी दुखी क्यों हुईं? इसका क्या कारण है?" विद्यावतीने कहा—"आर्य्यपुत्र! मैं स्वप्नमें भी कभी आपके चित्तपर आघात करना नहीं चाहती। पर आज एक असहाय अबलाके प्रति किसी अर्थ-पिशाचकी अत्याचार-पूर्ण करुण-कहानी सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है। मैं नहीं

समझती थी कि संसार इतना हृदय-हीन हो गया। यह आपसे अविदित नहीं है कि देशमें घोर दुर्भिक्ष छाया हुआ है। लोग अन्न बिना अकालमें ही काल कवलित हो रहे हैं। वस्त्र बिना कुल-महिलाओंकी लज्जातक बचती दिखाई नहीं देती। दुध-मुँहे बालक असहाय माता पिताकी आँखोंके सामने ही प्राण-विसर्जन कर रहे हैं। बेचारे किसानोंके जीवनका एकमात्र सहारा उनका पशु-धन निर्दयता पूर्व्वक दुर्दैव काल-द्वारा संहार किया जा रहा है। यह सब देखते हुए भी विवशतासे भूमि कर न दे सकनेके कारण हृदय-हीन भू-स्वामियोंके निर्दयी कर्मचारी उनपर नाना प्रकारके अत्याचार करते हैं। उनके भग्न हृदयोंपर अमानुषिकता-की ठोकर मारी जा रही है। पर, हाय! इस विपन्नावस्थामें उन्हें कोई भी सहायता देनेवाला नहीं। आप ही सोचें कैसी भयङ्कर दशा है। कैसा अमानुषिक व्यवहार है। भगवानने प्रत्येक देशके शिक्षितोंको वहाँकी मूक प्रजाका प्रतिनिधि बनाया है। उन्हींके उपार्जन किये हुए धनसे उन लोगोंको शिक्षा प्राप्त होती है; उन्हींके पैदा किये हुए अन्नसे सबके पेट पलते हैं। तब आपही बतावें कि उनकी रक्षा करना, कुसमयमें सहायता करना, क्या सबका धर्म्म नहीं है? फिर क्या कर्त्तव्य पालन करनेमें धर्म्म-च्युत हो उन्हें नरक-गामी न होना पड़ेगा? जिस देशकी ऐसी दशा हो उसे उन्नति-पथपर ले जानेका प्रयत्न करना आकाश-कुसुम प्राप्त करना है। धिक्कार है उस देशके शिक्षित समुदायको जिसे अपने देश-बन्धुओंके प्रति कर्त्तव्यका कुछ भी

ध्यान न हो। हाय! कर्म्मवीरोंकी इस लीला भूमिमें स्वार्थियोंका यह अखाड़ा! कर्म्मयोगी कृष्णकी सन्तानोंकी यह दुरवस्था!! प्रभो! क्या आपका इनके प्रति कुछ भी कर्त्तव्य नहीं? प्राणनाथ, आपको स्मरण होगा कि किसी दिन इस दासीको आपने इच्छा-वर देनेका अभिवचन दिया था। क्या उसे पूरा कीजियेगा?

देवी—देवी, तुम्हारी जो आज्ञा होगी, उसे मैं मन, वच, कर्म्मसे करनेके लिये तैयार हूं।

विद्या—देखिये, खूब सोच लीजिये। मैं जो चाहूंगी उसे देना ही होगा।

देवी—प्रिये, तुम जो चाहोगी, वही दूंगा। तुम साक्षात् जगज्जननी हो। तुम्हारी आज्ञाहीमें हमारा कल्याण होगा। यह शरीर ही तुम्हारा है। जो चाहे सो करो।

विद्या—अच्छा तो सुनिये, देशके लिये सभी सांसारिक सुखोंको तिलाञ्जलि दे दीजिये। मातृभूमिके उद्धारके निमित्त अपने शरीरको उत्सर्ग कर दीजिये। जननी-जन्म-भूमिकी सेवामें अपनेको समर्पण कर दीजिये। अपने दीन हीन असहाय भाइयों-की सेवाका व्रत अवलम्बन कीजिये। उनके दुःख हरनेमें बद्ध-परिकर हो जाइये और राजकीय उच्च-पद प्राप्त करनेकी अभिलाषा छोड़ दीजिये। इस महाकार्य्यमें ईश्वर आपका साथ देंगे।

दसवाँ परिच्छेद।
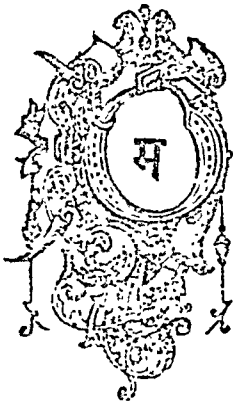
हाराज देवीशङ्करमें बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। सांसारिक ऐश्वर्य्यको तिलाञ्जलि दे, राजकीय उच्चपदकी उपेक्षाकर वे राष्ट्रीय सन्यासीरूपमें सजे हैं। उन्होंने असहाय देशवासियोंके उद्धारका बीड़ा उठाया है। हाथमें मोटा सोटा, माथेपर मुरेठा तथा ढीला ढाला लम्बा कुर्ता पहने गांव गांवमें घूमकर वे दीन हीन मन-मलीन कृषकोंकी वास्तविक दशाका अनुभव करते हैं। उन्हें ढाढ़स बँधाते हैं। जिन्हें कभी वन्य-जन्तुओंके सदृश समझकर घृणा करते थे और सहानुभूति दिखाना तो दूर रहा, जिनसे सीधे बोलनेमें भी झिझक मालूम होती थी,—अब उन्हें ही अपना रक्त समझकर वे उनसे प्रेम करते हैं। अब उन्हें इस बातका पूरा अनुभव हो चुका है कि जिनकी गाढ़े पसीनेकी कमाईसे उपार्जन किये हुए अन्न-वस्त्रसे सबका जीवन पलता हो, उनकी उपेक्षा करना घोर अन्याय है। वे सोचा करते—"उस देशकी ऐसी दीन दशा क्यों न हो, जहाँकी शिक्षित जनता अपने अन्नदाताओंके प्रति घृणा तथा उपेक्षाका भाव रखती हो। जहाँके नेता नामधारी महापुरुष नगरोंकी उच्च अट्टा-

लिकाओंमें मन्द मन्द समीरके झोकोंमें सुखकी नींद सोया करें और अपने नि ताओंकी जिन्हें मनः पीड़ा हो, उस देशकी उन्नति-का स्वप्न देखना पागलपन है। जबतक देशमें सहस्रों शान्त-शिष्ट विद्वान राष्ट्रीय-सन्यासी स्वार्थ-रहित हो देशके कल्याणके लिये केवल भोजन वस्त्रसे सन्तुष्ट होकर मृत-प्राय अबोध जनतामें नव-जीवन सञ्चार न करेंगे तथा उसे उसके वास्तविक स्वरूपको बताकर उसकी महती शक्तिका ज्ञान न करावेंगे, तबतक समदर्शी कृष्णकी सन्तानोंका अपनी प्राचीन स्थितिको प्राप्त करना असम्भव ही है।"

धीर गम्भीर महाराज देवीशङ्कर गांव गांव घूमते। जहाँ किसी विपद्ग्रस्त व्यक्तिके दुःख-समाचार सुनते वहीं जाकर उसे ढाढ़स बँधाते तथा उसके कष्ट निवारण करते। सहस्रों असहाय किसान अनाथ विधवाएँ और बालक इनके निकट आकर अपनी राम कहानी सुनाते। इन्हें देव-दूत समझते। उन बेचारोंके लिये यह नई बात थी।

इस प्रकार घूम घूमकर महाराज देवीशङ्करने जो कुछ देखा था, जैसा सुना था, उसीका मर्म्म-भेदी वर्णन उन्होंने समाचार पत्रोंमें प्रकाशित कराया और नेता नामधारी महापुरुषोंकी कड़े शब्दोंमें आलोचना की; राजकीय कर्म्मचारियोंकी खूब खबर ली और भू-स्वामियोंके अत्याचारोंका भण्डा फोड़ा। इसके निकलते ही देशभरमें बड़ी सनसनी फैल गई। पढ़े लिखे मनुष्योंके कान खड़े हो गये। सच्चे हृदयसे निकले हुए शब्दोंका लोगोंपर बड़ा

प्रभाव पड़ा। चारों ओरसे दया, करुणा तथा सहानुभूतिका श्रोत उमड़ उठा।

संसारमें अज्ञान बड़ा भारी पाप है। सैकड़ों वर्षोंसे मूक जनतापर इसी प्रकार अत्याचार होते चले आये हैं। फल-स्वरूप दिनपर दिन उसका ह्रास ही होता जा रहा है। कितने आशा-कुसुम होनहार नवयुवक बिना सहयताके अज्ञातावस्थामें ही मुरझा जाते थे; पर किसीको इसका पता ही न लगता था। उन लोगोंकी धारणा थी कि वे अमानुषिक अत्याचारोंके सहने, सरकारी कर्म्मचारियों तथा जमींदारोंकी बेगार करने और महाजनोंकी झिड़कियाँ सुननेहीके लिये उत्पन्न हुए हैं। महाराज देवीशङ्करके अथक परिश्रम, अदम्य साहस तथा अपूर्व्व उत्साहसे अत्याचार रूपी खोखले वृक्षकी जड़ें हिल गईं। बहुत दिनोंका बना हुआ बालूका क़िला ढह गया। देशवासियोंको वास्तविक अवस्थाका ज्ञान हो गया। किसी देशमें भी सच्चे कार्य्यकर्ताओंके अभावसे ही ऐसी दशा उपस्थित हुआ करती है। महाराज देवीशङ्करकी सूचना निकलते ही सहस्रों नवयुवक मातृ-भूमिकी अर्च्चनाके लिये एकत्र होने लगे। चारों ओरसे विपद्ग्रस्त देशवासियोंकी सहायताके निमित्त अपार धन-राशिकी वर्षासी होने लगी।

एक वह समय था जब देवीशङ्करजीका कोई सहायक न था, उन्होंने केवल अपने ही बलपर इस गुरुतर कार्य्यका श्रीगणेश किया था। पर आज सैकड़ों मनुष्य उनके अनुयायी होकर काम

करनेके लिये कमर कसे तैयार हैं। सेवा-कार्य्य बड़ी तत्परताके साथ होने लगा। स्वयं-सेवक गाँव गाँव घूम घूमकर गरीबों, असहायों तथा अनाथोंकी सहायता करते फिरने लगे। स्थान स्थानपर कई प्रकारके कार्य्योंकी व्यवस्था की गई। कहींपर नहर निकालनेका प्रवन्ध किया जाता, कहींपर तालाव वनवाये जाते और कहींपर कुएँ खुदवाये जाते। अस्तु जन-साधारणके जीवन-निर्व्वाहके लिये कितने ही रास्ते निकल आये। उन लोगोंका कष्ट निवारण हुआ। अकालकी विभीषिका दूर हो गई। किसीको कोई अभाव न रहा। सारे देशमें अमनचैन छा गया। महाराज देवीशङ्करका यश-सौरभ देशके कोने कोनेमें फैल गया। सहस्रों मुखोंसे उनकी प्रशंसाके गीत गाये जाने लगे। जिसे सुनकर विद्यावतीकी छाती दूनी हो जाती।

समय पाकर इन्द्र देवने भी कृपा की। माता वसुन्धरा पुनः सजला सफला शस्य-श्यामला हो गईं। सेवा-कार्य्य समाप्त हुआ। सभी मातृ-भक्त अपने अपने घर लौटे। विद्यावती भी अपने यशस्वी पतिके शुभागमनकी वाट जोहने लगीं। एक एक पल उन्हें वर्ष वर्षसा प्रतीत होने लगा।

उस दिन वे अपने कमरेमें बैठी उत्सुक भावसे किसी चिन्तामें निमग्न थीं कि दासीने एक पत्र लाकर दिया। यह पत्र देवीशंकरजीके हाथका लिखा हुआ था। भगवती विद्यावतीका हृदय किसी अज्ञात आशंकासे धड़कने लगा। उन्होंने घवड़ाहटके साथ उसे खोला और पढ़ते ही वे मूर्छित हो गईं। उन्हें चारों ओर अन्धकार

ही अन्धकार दिखाई देने लगा। दृढ़ताकी मूर्ति शक्ति-स्वरूपिणी भगवती विद्यावती अबोध बालिकाकी भाँति विलाप करने लगीं। जीवितेश, यह तुमने क्या किया? हमारी जीवन-नैयाको मँझधारमें छोड़कर तुमने ऐसा दुःसाहस क्यों किया? क्या गृहस्थाश्रममें रहते हुए तुम वही कार्य्य न कर सकते थे? क्या इस दासीपर कुछ भी दया न आई? तुम्हारे बिना तो मैं संसारमें कुछ भी न कर सकूंगी। दीनानाथ! आपकी आज्ञाके पालन करनेका क्या यही प्रसाद है? इतना कहते कहते वे अचेत हो गईं।

महाराज देवीशंकरके उस पत्रका आशय यह था :—

देवी,

तुम्हारी आज्ञा मैंने यथा-शक्ति पालन की। इस शरीरको देश-सेवाके लिये समर्पित कर चुका हूँ। अभी बहुत कुछ करना है। माताके दुःख दूर करनेमें बड़ी तपस्याकी आवश्यकता है। इसीलिये तुमसे विदा माँगता हूँ। यदि उस योग्य हुआ तो फिर कभी तुम्हारा दर्शन करूँगा। तुम अपना धर्म्म पालन करना। कामना करो कि ईश्वर हमारा इस महान्‌कार्य्यमें सहायक हो।

तुम्हारा,—

देवी।

ग्यारहवां परिच्छेद।

वीशङ्करको गृह-त्यागी हुए प्रायः एक वर्ष व्यतीत हो गया। बड़ी खोज की गई। सारा देश राई-रत्ती ढूंढ़ डाला गया, पर कहीं कुछ पता न लगा। विद्यावतीका सर्वस्व लुट गया। पण्डित गिरिजाशङ्कर-जीका सोनेका संसार ख़ाकमें मिल गया। उनकी कमर टूट गई। वे क्रमशः दुबले होते गये। सर्व्व-ग्रासिनी चिन्ताने उनका रक्त चूस लिया। भग्न-हृदय हो वे किसी प्रकार अपने जीवनके शेष दिन व्यतीत करने लगे। अन्तमें उनकी शक्तिने एकदम जवाब दे दिया। उन्हें सांसारिक रोगने आ दबाया। दिनपर दिन दशा बिगड़ने लगी और एक दिन उनके कलपते हुए प्राण-पखेरू उड़ गये। उनकी सहधर्मिणीका शरीर पहले ही छूट चुका था।

श्वसुरके पार्थिव शरीरके साथ ही साथ भगवती विद्यावती-के रहे सहे सुख तथा शान्तिके दिन भी चले गये। पण्डित गिरिजाशङ्करजीके अन्य दो पुत्र यद्यपि मूर्ख न थे, पर बड़े निर्बल-हृदय थे। उनकी स्त्रियां अशिक्षिता तथा कर्कशा थीं। विद्यावती-की सङ्गति तथा शिक्षाका सबपर प्रभाव पड़ा था; पर दीपकके

नीचे अंधेराही बना रहा। वे मनही मन उनसे बराबर जला करतीं। पर सास श्वसुरके भयसे खुलकर कुछ कहनेका कभी साहस न करतीं। उनके शरीरके अवसान होते ही अब उनलोगों-को खुलकर नाचनेका अवसर मिला, अपने अपने स्वामियोंको वे उँगलियोंपर नचाने लगीं। विद्यावतीपर वाक्य-बाणोंका प्रहार होने लगा। बात बातमें उनकी अवहेलना तथा उपेक्षा की जाने लगी। घरकी सारी व्यवस्था नष्ट हो गई। यह सब देखकर विद्यवती केवल हृदय मरोड़कर रह जातीं। जिन्हें कभी बिछौने-से उठकर पानी पीनेतकका कष्ट उठाना न पड़ता था जिनकी आँखके इशारेसे सारे कार्य्य सम्पन्न हो जाते थे,—हाय, उन्हीं विद्यावतीकी पति बिना ऐसी दुर्दशा कि यदि स्वयं भोजनकी व्यवस्था न करें तो भूखे ही रहना पड़े! हायरे दुर्दैव, तेरी लीला अपार है। मारे चिन्ताके वे दिन दिन कृश होने लगीं। वे मनही मन सोचतीं—"जिस देशकी स्त्रियोंकी कुशिक्षाके कारण ऐसी पतित दशा है उनकी सन्तानोंसे उन्नतिकी आशा कैसे की जा सकती है?

विद्यावतीका इस दुःखमें कोई सहारा न था। उनका चित्त निरन्तर अशान्त रहता; पर शान्ति देनेवाला कोई नहीं था। पास-पड़ोसकी शिक्षिता स्त्रियोंका आना जाना उन पिशाचिनि-योंके कारण बन्द हो गया था। जो विद्यावती सदैव दीन दुखियों-का सहारा थी, आज उन्हें इस विपत्तिमें कोई अवलम्ब नहीं। ईश्वर तेरी लीला अपार है। धर्म-पथपर चलनेका यही फल है?

मातृ-भूमिकी सेवामें विद्यावतीने अपना सब कुछ खो दिया। उसका क्या परिणाम है? अथवा ये परीक्षाएँ हैं।

अन्तमें उनसे और न सहा गया। उन्हें वहां पलभर भी रहना भारू हो गया। वे वहाँसे चिरकालके लिये विदा होकर पिताके घर चली गईं।

यहाँ आये विद्यावतीको लगभग एक महीना व्यतीत हो गया पिता-माताका पहले ही स्वर्गवास हो चुका था। मूर्खा तथा अनाचारिणी भ्रातृ-पत्नीका प्राधान्य होनेके कारण घरकी वह स्वर्गीय व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी। लड़कपनके कोमल हृदयपर पड़ा हुआ दुष्ट प्रभाव कभी नहीं छूटता। यही कारण है कि पण्डित रामकिशोरजीकी पति-परायणा, उदार-हृदया धर्म्म-पत्नीका सदुपदेशोंका उसके कठोर हृदयपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा था। पति-विछोहकी व्यथा तथा जेठानियोंके दुर्व्यवहारके कारण विद्यावतीका हृदय जर्जरित हो गया था। अतएव जिससे उनका परितप्त हृदय शान्त हो, इसी आशासे वे यहाँ आई थीं पर अभाग्य-वश उन्हें यहाँपर वहाँसे भी बढ़कर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। सास-श्वसुरके भयसे जिसे कभी विद्यावतीका मुँह देखना पड़ता था; उन्हींकी आज्ञा पालन करनेमें विद्यावतीका कल्याण था; कालके प्रभावसे अब वही काली नागिनके सदृश फुफकार छोड़कर विद्यावतीको अपने क्रोधका शिकार बनाती हैं।

कमलाकिशोरका गार्हस्थ्य-जीवन बड़ा दुःखमय था। माताके स्वर्गारोहणके दिनसे उन्हें एक दिनकी भी सुखकी रोटी नसीब

न हुई। स्वामीके घरमें आते ही जैसे कुल-वधुएँ उनकी सेवा-सुश्रूषा करती हैं, प्रीति-पूर्व्वक उनकी दुःख सुखकी बातें पूछती हैं, तथा अपनी मीठी मीठी बोलीसे उनके सांसारिक कष्ट हरती हैं, उसका सर्वथा यहाँ अभाव था। उलटे उन्हें बात बातमें व्यङ्ग भरी बोलियोंका शिकार बनना पड़ता था। विद्यावतीके आजानेसे वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें मानों कोई निधि मिल गई। विद्यावती भी भौजाईकी बातोंका कुछ भी ध्यान न कर उसी मनसे सारी गृहस्थीका प्रबन्ध करतीं, भाईके लिये उत्तम उत्तम भोजनोंकी व्यवस्था करतीं। तथा उनके बाल बच्चोंकी देखभाल करतीं। यह सब होते हुए भी वह दुष्टा उनसे कुढ़ा करती। भाईके काम काजकी वे जितनी ही सुव्यवस्था करतीं, उसका द्वेष उतना ही बढ़ता जाता।

उस दिन गृहस्थीके काम काजसे निवृत्त हो विद्यावतीको कमरेमें बैठे बड़ी देर हो गई, पर किशोरी अब भी न आई। वे उसे बुलानेके लिये बाहर आईं। देखा कि वह अपनी माँके पास बैठी है। विद्यावतीने मृदुस्वरसे कहा कि—'बेटी किशोरी तू अभीतक यहाँ बैठी क्या करती है? कुछ पढ़ने लिखनेका भी ध्यान है,—अथवा निरक्षर रहकर जीवन नष्ट करेगी। किशोरीकी मां तो पहलेहीसे भरी बैठी थीं। उसीने उस दिन उसे रोक रक्खा था। कुछ रोषमें आ अपने स्वाभाविक कर्कश-वाणीसे बोली।—'चलो रहने दो अपनी पण्डिताई। हमारी लड़की हमें ऐसी ही अच्छी लगती है। पढ़ लिखकर क्या कहीं उसे मदरसा पढ़ाना

है? या तुम्हारी तरह उपदेश देकर दोनों कुलोंकी बर्बादी करनी है? चूल्हेमें जाय ऐसी पढ़ाई, जिसके कारण लोक-परलोक दोनोंमें कहीं भी ठिकाना न रहे। ऐसा ज्ञान तुम्हींको मुबारक हो, जिसकी बदौलत आदमीको योगी बनकर दर दरका भिखारी बनना पड़ा और आपको दूसरोंके टुकड़ोंका सहारा लेना पड़ा।"

विद्यावती इन हृदय-विदारक शब्दोंसे बड़ी मर्माहत हुईं। उनका कलेजा टुकड़े टुकड़े हो गया। वे उलटे पैरों कमरेमें लौट अवसन्न हो पृथ्वीपर पछाड़ खाकर गिर पड़ीं। हाय, विद्यावती, तुम्हारी यह दुर्दशा! परोपकार करनेका यह परिणाम!! किसी समय जिनका मुँह देखकर सभी जीते थे, जो माता पिता सास-श्वसुर तथा पतिके सुखकी आधार थीं, आज समयके फेरसे उनकी यह असहायावस्था कि संसारसे उपेक्षित हो निर्जन कमरेमें पड़ी हुई सिसक रही हैं; पर कोई एक बूँद पानीतक देनेवाला नहीं। सर्पिणी-स्वरूपिणी, प्रचण्ड-मूर्ति धारिणी गृह-स्वामिनीकी इच्छा बिना क्या मजाल कि कहीं पत्तातक खड़क जाय। अस्तु, कुछ समयके पश्चात् उन्हें आपही आप कुछ चेत हुआ। मनमें बड़ी भारी व्यथा थी। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार प्रतीत होता था। घोर दुश्चिन्ता उन्हें दबाये हुए थी। वे मन ही मन सोचने लगीं—"पति बिना मेरी यह दुर्दशा! भगवन्, जिस देशकी स्त्रियोंकी ऐसी पतित दशा है, जहां मेरे ही समान सैकड़ों अबलाओंपर घोर अत्याचार होते हैं, तथा जहाँपर लाखों बाल विधवाओंको सांसारिक सुख कभी स्वप्नमें भी नसीब नहीं होता,

जो मानो सामाजिक अत्याचारोंके सहनेहीके लिये बनाई गई हैं. जिनके मानसिक विकाशका कोई रास्ता नहीं, जिनके ऊपर पद पदपर सन्देह किया जाता है और जिन्हें मूर्खा सास ननद तथा जेठानियोंके उत्पीड़नसे उत्पीड़ित होना पड़ता है—पर जिनका कोई आश्रय नहीं, भला उस देशकी उन्नतिकी आशा कैसे की जा सकती है! . उन्हींकी ज्वाला भरी आहसे भारत क्रमशः भस्म होता जा रहा है। जो असहायोंपर अत्याचार करता है, अवश्य ही ईश्वर उसे उसका प्रतिफल देता है। उसे संसारमें पद पदपर लाञ्छित होना पड़ेगा।")

यकायक उनके हृदयमें शक्तिका सञ्चार हुआ मनही मन कहने लगीं—— जिस साहस तथा विश्वासपर मैंने जीवन-धनको कर्त्तव्य-पथपर चलनेकी सलाह देकर सांसारिक सुखोंको तिला-ञ्जलि देनेका अनुरोध किया था, क्या उसका एकदम ही लोप हो गया? अथवा वे बातें सब उन्हींतक परिमित थीं? नहीं! कदापि नहीं!! जिस पथके पथिक बनकर प्राणेश्वरने कठिन व्रतको पालन करनेकी भीष्म-प्रतिज्ञा की है मैं भी उसी पथपर चलकर उनके पदोंका अनुसरण करूंगी।

गार्हस्थ्य-जीवन बड़ा पवित्र तथा सुखमय होता है। उसके सामने स्वर्गीय सुख-मन्दिर भी तुच्छ है; पर जहाँ अविद्या तथा अनाचारका अटल साम्राज्य होता है, वहाँसे उसकी महत्ता कोसों दूर भग जाती है। जिस देशके आशा-वृक्षोंकी जड़में घुन लगा

हो उसकी उन्नतिकी आशा करना दुराशा मात्र है। भगवन्! मुझे बल दो। शक्तिशालिनी दुर्गे! मुझे साहस प्रदान करो; हमारी नसोंमें उन्हीं प्रातःस्मरणीय धर्म्म प्राण ऋषियोंका रक्त प्रवाहित होता है; हम उन्हीं भगवती सीता, सावित्री, कैकेयी, अहिल्याबाई तथा लक्ष्मीबाईकी सन्तान हैं, जिन्होंने अपने शौर्य्य, वीर्य्य तथा तेजसे जगन्मण्डल दैदीप्यमान् किया था। कर्मयोगी कृष्ण, तुम हमारे सहायक बनो। हमारे कानोंमें फिर एक बार अपनी गीताके महामन्त्रको फूँक दो जिसमें मैं इस पवित्र देशकी पतित अवस्थाकी कारण स्वरूप गृह-स्वामिनियोंको सुपथपर लानेमें कृत-कार्य्य होऊँ। विना ऐसा किये मुझे अब विश्राम कहाँ! आत्मामें शान्ति कहाँ!! यही कहते कहते वे उठ बैठीं और धीर गम्भीर भावसे निकटही रक्खे हुए एक कोरे कागज़पर कुछ पंक्तियाँ लिख वहीं रख दिया।

इस समय रात्रिके प्रायः तीन बज चुके थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। सभी निद्रा देवीकी गोदमें पड़े थे। विद्यावतीने बड़ी सतर्कतासे कमरेका द्वार खोल दबे पैरों चारों ओर घरकी परीक्षा की, पुनः कमरेमें प्रवेश कर एक कम्मल तथा काँपते हुए हाथोंसे एक ताम्र पात्र उठा लिया और सजल नेत्रोंसे चारों ओर देख कुल-देवताको प्रणाम कर वे कहने लगीं—"देव, यह अभागिनी अब चिरकालके लिये विदा माँगती है। आशीर्वाद कीजिये कि जिस महान् उद्देश्यको लेकर यह गृह-त्यागिनी होती है, उसमें सफलता प्राप्त करे।" इतना कह उन्होंने

बड़ी सावधानीसे घरका द्वार उन्मुक्तकर जङ्गलकी ओर प्रस्थान किया और देखतेही देखते वे अन्धकारमें विलीन हो गईं।

कमलाकिशोरको किशोरीकी माँके दुर्व्यवहारका हाल रात्रिहीके समय नौकरसे विदित हो चुका था। सारी रात उन्हें नींद न आई ; स्त्रीकी नीचतापर बड़ा क्रोध आया। पर बेचारे कर ही क्या सकते थे। इतना साहस कहाँ कि उस काली नागिनका फुफकार सहन करें। उसकी कड़कती हुई आवाज़से ही विह्वल कमलाकिशोरका कलेजा काँप जाता था।

सवेरा होतेही एक दासी दौड़ती हुई आई और बोली—"महा-राज, अनर्थ हो गया ; आपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। द्वार उन्मुक्त पड़ा है। बहन विद्याका कुछ पता नहीं। वे न मालूम कहाँ चली गईं। इतना सुनतेही कमलाकिशोरके हृदयपर कठोर आघात लगा। वे दौड़ते हुए बहनके कमरेमें गये, पर उसे खाली पाया। वे हतबुद्धि हो पछाड़ खाकर गिर पड़े और कहने लगे—"हा ईश्वर! यह क्या हुआ? अब मैं संसारमें कैसे मुँह दिखा-ऊँगा? यद्यपि मैं उसे निष्कलंकिनी साक्षात् भगवती समझता हूँ, पर लोग क्या कहेंगे? वे मेरे मुखपर कलंक-कालिमा पोतेंगे। राक्षसी अविद्या! तूने भारतका सत्यानाश कर डाला। तेरेही कारण भगवती भारती, गार्गी तथा मैत्रेयीकी सन्तानें पिशा-चिनी बनकर देशके कोने कोनेको अशान्तिमय बना रक्खा है। पुनः अपनेको सम्हालकर उन्होंने कमरेकी खूब देखभाल की।

यकायक टेबिलपर रक्खे हुए एक पत्रपर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने शीघ्रतासे उसे उठाकर पढ़ा। उसका सार यह था :—

पूज्य भैया,

संसारसे मन विरक्त हो चुका है। नाना प्रकारके आघात प्रत्याघातोंसे हृदय जर्जरित हो गया है। राक्षसी अविद्याने सारे देशको अशान्त कर रक्खा है। गृह-देवियाँ अपना कर्त्तव्य भूली हुई हैं। सहस्रों असहाय विधवाएँ यन्त्रणा अग्निकी आहुति हो रही हैं। उनकी दुःखभरी आहसे यह स्वर्ण-भूमि भस्म हुआ चाहती है। आपके चरणोंको प्रणामकर मैं विदा होती हूं। सर्व्वशक्तिमान् नारायण मुझे बल दें कि मैं भारतीय-स्त्री-जातिका उद्धार कर सकूँ। आप भी यही आशीर्वाद दीजिये।

आपकी बहन—

विद्या।

बारहवां परिच्छेद ।
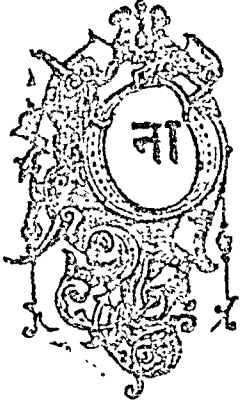
ना प्रकारके विशाल वन्य-वृक्षोंसे आकीर्ण एक भयानक सघन वन था। रात अधिक बीत चुकी थी। कृष्ण पक्षका घोर अन्ध-कार छाया हुआ था। चारों ओर निस्तब्धताका साम्राज्य था। पर बीच बीचमें भयावने हिंस्र-जन्तुओंकी डरावनी चीत्कार सारे वनको आलोड़ित कर देती थी। ऐसे ही समय एक अनुपम लावण्यमयी रमणी उधरसे आ निकली। कितना भयावना दृश्य था, पर उन्हें कोई चिन्ता न थी। वह अपनी धुनमें मस्त बराबर पग बढ़ाये चली जाती थीं। कँटीली झाड़ियोंमें फँसकर उनकी साड़ी टूक टूक हो गई थी। शरीर क्षत-विक्षत हो गया था। कहीं कहींसे रुधिर-धारा निकल पड़ी थी,--पर इसका कुछ भी ध्यान न था। वह पथ-भ्रान्त हो गई थीं, इसीसे बराबर चेष्टा करनेपर भी रास्ता न मिलता था। घूम फिरकर फिर वहीं आ जाती थीं।

यकायक चारों ओरसे आकाश मेघाच्छन्न हो गया। दामिनी दमकने लगी और घोर गर्जनके साथ ही साथ अविरल वारि-

वर्षा होने लगी। सारे वनमें खलबलीसी मच गयी। नानाप्रकारके भयङ्कर वन्य-जन्तु डरावनी बोलियाँ बोलते हुए इधर उधर दौड़ दौड़ अपनी अपनी गुफाओंमें छिपने लगे। ऐसे दुर्गम समयमें दैवकी सतायी विद्यावती एक वृक्षके नीचे खड़ी २ यह सारा दृश्य देख रही थीं। उन्हें इस वर्षासे बचनेके लिये कहीं आश्रय न मिला था। ईश्वर! तेरी माया अपार है। एक समय जिनके साथ सैकड़ों दास दासियां रहा करती थीं, सभी जिनका मुँह ताकते थे तथा जो सहस्रों असहायोंकी अवलम्ब थीं, कालके प्रभावसे उन्हें आज यह दिन देखना पड़ा। परमात्मा! तेरी माया कुछ समझमें नहीं आती। लोग तुझे दीनानाथ कहते हैं और तेरी न्यायकारितापर विश्वास करते हैं। धार्म्मिकजनोंने तेरी सत्ताका अनुभव कर तेरी प्रशंसाके पुल बाँध दिये हैं। पर तेरा गोरख-धन्धा कुछ भी समझमें नहीं आता। संसारमें प्रायः देखा जाता है कि जो धार्म्मिक हैं जो तेरी आज्ञाओंके पालन करने तथा दूसरोंके कष्टोंके निवारण करनेमें सचेष्ट रहते हैं, उन्हें ही कष्टोंका सामना करना पड़ता है। विपत्ति उनके पीछे पड़ी रहती है। पर जिन्हें केवल अपने ही स्वार्थकी चिन्ता रहती है, संसारमें 'येनकेन प्रकारेण' धन कमाना ही जिनके जीवनका लक्ष्य है और ईश्वर तथा देशके साथ उनका क्या सम्बन्ध है, इसकी जिन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं रहती ;—वेही यहाँ धनधान्यसे परिपूर्ण और सुखसे रहते हैं।

विद्यावतीको सुख पूर्व्वक जीवन व्यतीत करनेकी सभी

सामग्री उपस्थित थी। पितृालय तथा श्वसुरालय दोनों ही धन धान्यसे भरे पूरे थे, एवं शिक्षित पति उनका आज्ञानुवर्ती था। उन्हें और क्या चाहिये था? पर केवल दीन दुखियोंकी सहायता करनेहीके लिये उन्होंने सांसारिक वैभवकी रत्तीभर भी परवाह न की। उन्होंने सत्य-धर्म्मके गूढ़ अर्थ समझाकर पतिको विरागी बनाया; तथा देश-सेवा-व्रत अवलम्बन कर स्वयं भी गृह-त्यागिनी हुईं। उसका क्या यही परिणाम है कि ऐसी भयङ्कर दशाका सामना करना पड़ा?

घरसे चलकर हिमालयकी ओर जानेके लिये उन्होंने बराबर कई दिनतक विना अन्न-जल ग्रहण किये रेल द्वारा तथा पैदल यात्रा की, मार्ग-जन्य बड़ी बड़ी कठिनाइयोंका भी सामना किया, पर वे रत्तीभर भी विचलित न हुईं। उपरोक्त घोर अन्धकारमय दुर्गम वनमें भी जब वे यकायक पथ-भ्रान्त हो असहायावस्थामें आ पड़ी थीं, कहीं कोई ठिकाना न था, बड़ी भयानक अवस्थामें थीं तब भी किञ्चिन्मात्र विचलित न हुई थीं। अपनी धुनमें मस्त निःशंक सिंहिनीकी भाँति चली जाती थीं। पर जब प्रलयङ्करी वर्षासे रक्षा पानेके लिये निराश्रितोंकी आश्रयदात्री भगवती विद्यावतीको कहीं आश्रय न मिला तब उनकी हिम्मत एकदम टूट गई। वे विह्वल हो उठीं। खड़े खड़े वे थर थर काँपने लगीं। मारे सरदीके उन्हें अपनी सुध-बुध भूल गई और अन्तमें मूर्छित हो मूलोत्पाटित वृक्षकी भाँति चीख मारकर वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं।

धीरे धीरे कुछ होश आया। वर्षा रुक गई थी। मेघ-माला छिन्न भिन्न हो चुकी थी। चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देता था; निशानाथ अपनी शीतल चन्द्रिका छिटका रहे थे। विद्यावतीका शरीर पानीसे लथ-पथ हो गया था। कर्दममय जमीनमें पड़े ही पड़े उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और फिर धीरे धीरे बड़े कातर स्वरसे इस प्रकार कहना आरंभ किया —"प्रभो! देश सेवा-व्रत अवलम्बन करनेका क्या यही परिणाम है? धर्म्म-पथपर क्या कांटे ही कांटे हैं? अपनी बुद्धिके अनुसार मैं आपके बताये हुए पथकी पथिक हुई हूं। हृषीकेश! मैं आपकी शरण हूं। मुझे कर्त्तव्य-पथ दिखलाइये—जहांसे होकर मैं अपनी इष्ट सिद्धि कर सकूं। इतना कह वे कुछ सोचने लगीं कि कहींसे मधुर वीणा-ध्वनि सुनाई पड़ी। उनके हृदयमें नवीन जीवनका सञ्चार हुआ। वे कहने लगीं—"अहा! क्या ही मधुर स्वर है। इस निर्जन वनमें मेरे कर्ण-कुहरोंमें यह अमृत कौन टपका रहा है? प्राचीन आर्य्य-ग्रन्थोंमें देवर्षि नारदकी जिस वीणा-ध्वनिकी बातें पढ़ा करती थी, क्या वह सत्य ही प्रत्यक्ष हो रही है? क्रमशः वह मधुर ध्वनि निकटतर आने लगी। विद्यावती प्रेम-विह्वल हो उठीं। उनका हृदय गद्गद् हो आया। देखते देखते एक दिव्य मूर्ति मुस्कराते हुए उनके सम्मुख आ खड़ी हुई। विद्यावती एकटक उसकी ओर देखनी लगीं। क्याही भव्य मूर्ति थी, कैसा प्रभा-पूर्ण मुख-मण्डल था। गोरा शरीर तथा लम्बी श्वेत- दाढ़ी, शरीरमें

गेरुआ रङ्गका लम्बा अङ्गरखा, चरणोंमें पादुका तथा हाथमें पीयूष-वर्षी वीणा-यन्त्र था। शरीरसे दिव्य ज्योति निकल रही थी। विद्यावतीने उठनेका प्रयत्न किया, पर उठ न सकीं; बोलनेका प्रयत्न किया, पर गला रुँध गया; हृदय प्रेमसे उछ-लने लगा। उन्होंने पड़े ही पड़े उक्त महापुरुषको प्रणाम किया। साधुने पूर्व्व परिचितकी भाँति उनके मस्तकपर अभय हाथ रखकर ढाढ़स बँधाया और प्रेम-पूर्व्वक कहा--'बेटी, तू धन्य है; और धन्य है वह वीर-प्रसूता वसुन्धरा जहाँ तू उत्पन्न हुई है; तेरा परोपकार व्रत धन्य है। देवी, तुम्हारा व्रत पूरा होगा। तुम्हारी कामना सफल होगी! आओ अभी मेरे साथ आओ। इतना कह वे चल पड़े। वृद्धके सान्त्वना पूर्ण शब्दोंसे विद्यावती बहुत कुछ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। अतएव, उन्होंने धीरे धीरे महापुरुषका अनुसरण किया और देखते देखते दोनों दिव्य शरीर अदृश्य हो गये।
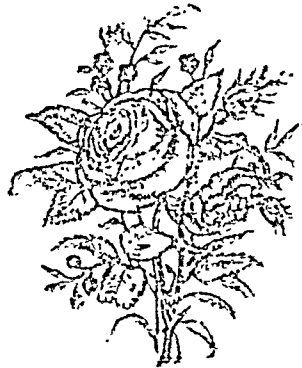
तेरहवां परिच्छेद।

त-कालका अन्त हो चुका है। निर्धनों, निराश्रितों तथा वन्य-जन्तुओंके हृदयों-तकको हिला देनेवाली भयावनी ठण्डकका शमन हो चुका है। जन-हित कारिणी आमोद दायिनी वसन्त ऋतुके साम्राज्यका विस्तार हो रहा है।

भारतीय नन्दन-कानन-काश्मीरकी सुरम्य भूमिके अन्तर्गत महाप्राण आर्य्य-ऋषियोंके लीला-निकेतन पर्वतराज हिमालयसे लगा हुआ एक सघन वन है। ऐसे भयावने स्थानमें वन्य-जन्तुओंको छोड़कर अन्य किसीको जानेका न तो अवसर मिलता है, और न कोई अनायास जानेका साहस ही करता है। इस दुर्गम वनमें होकर नाना प्रकारके घोर कष्टोंको सहता हुआ सांसारिक दुश्चिन्ताओंसे ग्रसित एक ब्राह्मण-कुमार सूर्योदय होते होते ऐसे रमणीक स्थानमें आ पहुंचा, जहाँकी शोभा वर्णनातीत है। बड़ा रम्य स्थान है। बड़ी बड़ी पर्वत-मालाएँ सुन्दर-सुगन्ध युक्त पुष्प-वृक्षोंसे ढँकी हुई हैं। जिनसे निकली हुई सुगन्धसे मिलकर शीतल समीर सारे बनको सुगन्ध-सुरभित कर रही है। वृक्षोंकी डालियोंपर रङ्ग विरंगे पार्वत्य-प्रादेशीय

सुहावने पक्षीगण अपनी अपनी सुरीली बोलियां बोलबोलकर इस डालीसे उस डालीपर फुदक रहे हैं। दिवानाथने अपनी सुनहली किरणें छिटकाकर सारे स्थानको स्वर्ण-रञ्जित कर दिया है। एक जगह दो पहाड़ियोंके बीचसे होकर सिन्ध नदी कलकल-नाद करती हुई प्रवाहित होती है। जिसकी तरङ्ग-मालाएँ सूर्य्य-रश्मियोंसे तप्त कञ्चनवत् प्रतीत होती हैं। इसीके किनारे किनारे एक पगडण्डी उक्त पहाड़ियोंसे होती हुई न मालूम कहाँ चली गई है। पथिक एकदम थका हुआ था। सारा शरीर कांटोंसे क्षत-विक्षत हो गया था। पर मुख-मण्डलपर स्वाभाविक तेजस्वी भाव विराज रहा था। यहां पहुंचते ही उसका चित्त हरा हो गया। वहीं कुछ दूरपर बैठकर वह उपरोक्त घांटीकी शोभा निरखने लगा। क्याही स्वर्गीय दृश्य था। दोनों ओर बड़ी बड़ी पहाड़ियाँ थीं, जिनसे हरी हरी सुकोमल पत्तियों तथा फूलोंसे लदे हुए वृक्ष अपनी लताएँ विस्तारपूर्व्वक एक दूसरेका आलिङ्गन कर रही थीं जिससे एक लता-मण्डप बन गया था; जिसपर सूर्य्यकी सुनहली किरणें अपनी आभा छिटकाये हुए थीं। उसके नीचेसे सिन्ध किसी अदृश्य स्थानसे कलकल नाद करती हुई चली आती थी।

श्रान्त पथिक बैठा उसी मनोहारिणी छटाका आनन्द लूट रहा था कि किसी वस्तुको देखकर वह चमक उठा। नदीके किनारे किनारे जानेवाली पगडंडीसे लताओंको भेद करता हुआ गेरुआ रङ्गका लम्बा अङ्गरखा पहने, माथेपर उसी रङ्गका साफ़ा बाँधे

तथा हाथमें एक मोटा सोंटा लिये एक सन्यासी आता दिखाई दिया। उसका दिव्य शरीर, शान्त तथा तेजस्वी मुख-मण्डल और गम्भीर भाव देखकर पथिक रोमांचित हो गया। उसके हृदयमें भक्ति-भावका सञ्चार हुआ। महापुरुष क्रमशः इसी ओर अग्रसर होने लगे। वे जितना निकट आते, पथिक उतना ही पुलकित होता जाता। स्वामीजी किसी गम्भीर विचारमें मग्न हाथीकी भाँति झूमते हुए चले आते थे। अत्यन्त निकट आ जानेपर यकायक उनकी दृष्टि उक्त पथिकपर पड़ी। पथिक प्रेम-विह्वल हो उनके चरणोंमें जा गिरा। स्वामी-जीने कुछ विस्मित हो उसकी ओर देखा, फिर बड़े प्रेमसे उठाकर उसे गले लगा लिया और बोले—"कमलाकिशोर! तुम यहाँ कैसे आये? तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? अच्छा मैं समझ गया। आओ, अब कोई चिन्ता नहीं। तुम महाराज रामकिशोरकी योग्य सन्तान हो। योग्य पिताके योग्य पुत्र हो। चित्तको शान्त करो। हृदयमें साहस रक्खो। कमलाकिशोर एक अपरिचित सन्यासीके मुखसे अपना नाम सुनकर बड़े चकित हुए। उनका शरीर मारे आनन्दके पुलकित हो उठा। वे कुछ कहा चाहते थे, पर मुँहसे शब्द न निकला। वे केवल भक्ति-भावसे कर जोड़े उनके मुँहकी ओर टकटकी लगाये खड़े रह गये। उन्हें सन्यासीकी मुखाकृति कुछ पूर्व्व-परिचितसी जान पड़ी। स्वामीजीने उनके मनकी बात जान ली। उन्होंने कहा—'महाराय, मैं आपका भाव समझ गया। आप इस समय बड़े कौतूहलमय हुए होंगे।

पर नहीं, हमारे परिचयके लिये आपको विशेष उत्सुक न होना चाहिये। समयानुसार सब कुछ मालूम हो जायगा। जिस महान् उद्देश्यको सम्मुख रखकर आपने संसार-सुख त्यागनेका निश्चय किया है परमात्मा उसे पूरा करेंगे; तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। भक्त-भय-हारी विहारी हमलोगोंकी सहायता करेंगे। आइये, शान्त भावसे मेरे साथ चले आइये। इतना कह स्वामीजी पिछले पैरों लौट पड़े। कमलाकिशोरने खुशी खुशी उनका अनुसरण किया।

विद्यावती जबसे गृह-त्यागिनी हुई थीं, तबसे कमलाकिशोरका मन सांसारिक कार्य्योंमें न लगता था। वे प्रायः दुखी रहा करते। छोटे भाई कृष्णकिशोर विदेशमें ही थे। इतने बड़े कार्य्यको सम्हालनेवाला कोई न था। इसीसे वे किसी प्रकार अपने दिन व्यतीत करते रहे।

कृष्णकिशोर जब घर लौटे तब उन्हें अपने घरकी दुर्दशा देख बड़ा दुःख हुआ। पिताके समयकी सारी बातें एक एककर याद आने लगीं। पर विदेशमें रहने तथा स्वतन्त्र वायु-मण्डलमें विचरण करते रहनेके कारण वे बड़े अनुभवी हो गये थे। उनमें कार्य्य करनेका जोश भरा हुआ था। अतएव उन्होंने दुःखको भुलाकर बड़ी सावधानीसे बिगड़ते हुए कार्य्यको सम्हाला। थोड़े ही दिनोंमें सारे काम फिर सुचारु रूपसे होने लगे। वे पिताहीके समान योग्य तथा सहृदय सिद्ध हुए। धीरे धीरे लोग रामकिशोरका दुःख भूलने लगे। कृष्णकिशोरका ब्याह भी

उनके पिताके मित्र तथा श्रीनगर कालेजके अध्यक्ष पण्डित कृपाशङ्करजी मिश्रकी सुशीला तथा विद्यावती कन्या उमाके साथ हो गया। उमाने अंग्रेजीमें मैट्रिक्यूलेशन तथा हिन्दीमें विशारदकी परीक्षाएँ पास की थीं। वह कृष्णकिशोरको पहलेहीसे बड़ा प्यार करती थीं और उनके विदेशसे लौटनेपर उन्हींसे व्याह करनेकी प्रतिज्ञा की थीं। वह अपनी सुन्दरता तथा शालीनताके कारण थीं भी उन्हींके योग्य। इस प्रकार जब सारे कार्य्य सुचारु रूपसे सम्पन्न होने लगे तब कमलाकिशोरने अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये एकदिन चुपचाप जङ्गलका रास्ता लिया और घूमते घामते वे वहाँ आ पहुँचे। अस्तु।

चौदहवाँ परिच्छेद।
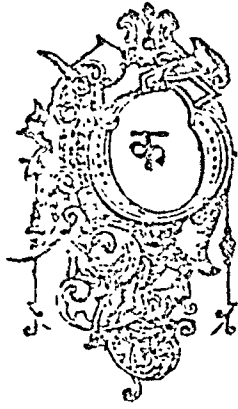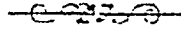
मलकिशोर स्वामीजीके साथ उपरोक्त घाटी-में घुसकर कितने ही घुमावदार रास्तोंको अतिक्रमण करते हुए एक ऐसे रमणीक स्थानमें जा पहुँचे, जहाँकी शोभा अकथनीय है। चारों ओरसे सुहावनी पर्वत-माला-ओंसे घिरी हुई बहुत लम्बी चौड़ी समतल भूमिपर एक बड़ा भारी सुन्दर उद्यान है। जहाँपर नाना प्रकारके फूलों तथा फलोंके वृक्ष लगे हुए हैं। कहींपर आम, कहींपर सेव, कहींपर सन्तरा, कहींपर अमरूद कहींपर नाशपाती, तथा कहींपर दाड़िम, अंगूर और किसमिसके वृक्ष दूर दूरपर अपनी अपनी कतारें बांधे मन्द मन्द समीरके झोकोंसे झूम रहे हैं। बीच बीचमें सुन्दर सुगन्धयुक्त फूलोंकी क्यारियाँ बनीं हुई हैं। यत्रतत्र सुन्दर सुन्दर जलाशय बने हुए हैं, कमल विकसित हो रहे हैं। चारों ओर जानेके लिये सड़कें बनी हुई हैं। शान्तिका अटल साम्राज्य है। किसीको किसीका भय नहीं। मृग-शावक-स्वच्छन्द किलोल कर रहे हैं। मयूर मगन मन नृत्यकर रहे हैं। पपीहा बोल रहा है, कोयल पञ्चम स्वरसे कूक रही है। इसी उद्यानके बीचमें एक बड़ा

विशाल गोलाकार प्रासाद् बना हुआ है। पहाड़ियोंकी चोटियोंपरसे ऐसा भयनक मालूम पड़ता है, मानो हरे रङ्गके कालोनपर रंग बिरंगे वेल बूटे काढ़े हुए हैं।

कमलाकिशोर यहाँकी शोभा देख भौंचक्केसे हो गये ; उन्हें असीम आनन्द प्राप्त हुआ। उनके सारे कष्ट दूर हो गये। यहाँकी प्राकृतिक छटासे प्राचीन आर्य्य-ग्रन्थोंमें वर्णित स्वर्गके नन्दन-काननके सारे दृश्योंकी तुलना कर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, कि मानो वे सदेह धर्म्मराज युधिष्ठिरकी भांति भगवान इन्द्रदेवके दरबारमें आ पहुंचे हैं।

कुछ दूर अग्रसर होनेके पश्चात् वे उपरोक्त गोलाकार दर्शनीय प्रासादके निकट आ पहुंचे। थोड़ी दूर हटकर उसके आस पास सैकड़ों आश्रम बने हुए हैं, जहाँपर कितनी गैरिक-वसन-धारिणी ब्रह्मचारिणी देवियाँ तथा ब्रह्मचारी अपने कार्य्योंमें निरत दिखाई दिये। यहाँ पहुँचकर इन्हें बड़ी शान्ति मिली। अहा! क्या ही शान्तिका साम्राज्य है। कहींपर भय, क्रोध तथा ईर्षाका नाम निशान नहीं।

स्वामीजी महाराज कमलाकिशोरको एक विशाल कमरेमें ले गये। यही यहाँका आतिथ्य-गृह है। कभी किसी अभ्यागतके आनेपर उसे यहीं स्थान दिया जाता है। इनलोगोंके वहाँ पहुँचते ही कई युवक ब्रह्मचारी आकर उपस्थित हुए। स्वामीजी उन्हें कुछ आदेश दिया और फिर कमलाकिशोरसे कहा,—"यहाँका सारा काम देखकर आपका चित्त अवश्य ही विस्मित

हुआ होगा और सारा हाल जाननेके लिये आप बड़े उत्सुक होंगे। पर धैर्य्य रखिये ; सब कुछ आपको आपही आप ज्ञान हो जायगा। अभी मार्ग-जनित कष्टोंके कारण आप बहुत थके हुए हैं। कृपया नित्य नैमित्तिक कार्य्योंसे निवृत्त होकर श्रम दूर कीजिये, चित्तको शान्त कीजिये फिर मैं इस आश्रमकी सभी बातें आपको समझाऊँगा। इतना कह स्वामीजी चले गये।

कमलाकिशोर नित्य-कर्म्मसे निवृत्ति हो स्फटिक विनिन्दित निर्म्मल जलाशयमें स्नान कर बड़े प्रसन्न हुए। उनकी सारी थकावट दूर हो गई। रास्तेके सभी कष्ट विस्मरण हो गये। अस्तु। सन्ध्या वन्दनसे निवृत्त होते ही आश्रमके बने हुए सात्विक भोजन आपके सामने लाये गये। कई दिनोंके भूखे प्यासे कमलाकिशोरने उन्हें बड़े प्रेमसे खाया। सीधे सादे आडम्बर-हीन भोजनोंमें क्याही स्वाद था। कितना माधुर्य्य था—कहा नहीं जा सकता। इसके उपरान्त कमलाकिशोरजी आराम करने लगे। थके तो थे ही, पड़ते ही सो गये।

पन्द्रहवां परिच्छेद ।

दिनके तीन बज चुके थे। कमलाकिशोर निद्रा त्याग हाथ मुँह धो आसनासीन कुछ सोच रहे थे कि उक्त स्वामीजी महाराज आते दिखाई दिये। निकट आते ही कमलाकिशोरने उन्हें उठकर प्रणाम किया। स्वामजीने उसका प्रत्युत्तर दे, मृदु हँसी हँसते हँसते कहा—"कहिये आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ। आइये, मेरे साथ आइये और आश्रमके सारे विभागोंका परिदर्शन कीजिये। इतना कह स्वामीजी चल पड़े। कमलाकिशोर उनके पीछे पीछे चले।

कमलाकिशोरके मनमें नाना प्रकारके विचार उठने लगे—चारों ओरसे दुर्गम पहाड़ियोंसे घिरे हुए इस नन्दन-काननकी किसने रचना की? इस सन्यासी सङ्घका प्रवर्तक कौन है? यह सब एक दिनका काम नहीं है। इसके लिये वर्षों भगीरथ-परिश्रम करना पड़ा होगा। कैसा अच्छा संगठन है। कैसी व्यवस्था है। क्या निःसहाय, निरावलम्ब भारत भूमिका उद्धार करनेके लिये तो यह सब उपाय नहीं किये जा रहे हैं?

यही सब बातें सोचते सोचते वे उक्त विशाल गोलाकार मन्दिरके निकट आ पहुँचे। स्वामीजीके साथ उन्होंने उसमें प्रवेश किया। अब तो उनके आश्चर्य्यका और भी ठिकाना न रहा। यह विशाल प्रासाद लगभग पचास बीघे जमीनपर बना हुआ है और इसमें अलग अलग कितने ही विभाग हैं। प्रत्येक विभागमें कितनी ही तपस्विनी तथा तपस्वी दत्त-चित्त अपने अपने कार्य्योंमें निरत हैं। इसका चौक भी कई बीघेका है। जिसमें फुलवाई लगी है। यत्रतत्र लता-मण्डपोंके नीचे तिपाइयाँ पड़ी हुई हैं। जिनपर अवकाशके समय विद्यार्थीगण आकर बैठा करते हैं। प्रासादकी बनावट बड़ी उत्तम है। क्याही विचित्र कारीगरी है। मालूम होता है कि विश्वकर्म्माने स्वयं इसका निर्माण किया है।

स्वामीजी कमलाकिशोरको एक एककर सब विभाग दिखाने लगे। प्रवेश करते ही सामने एक विशाल कमरेके द्वारपर "साहित्य-परिषद्" शब्द अंकित दिखाई दिये। साहित्य-सेवी कमलाकिशोरका हृदय-कमल विकसित हो गया। स्वामीजीके साथ साथ उन्होंने उक्त कमरेमें प्रवेश किया। सामने ही गैरिक वस्त्रधारी एक दिव्य मूर्त्ति महात्माके दर्शन हुए। उन्होंने स्वामी-जीको अभिवादनकर कमलाकिशोरका प्रीतिपूर्व्वक स्वागत किया। कमलाकिशोरने उस विशाल कमरे पर ऊपरसे नीचे-तक एक गम्भीर दृष्टि डाली। दीवालोंपर प्रायः सभी प्राचीन तथा अर्व्वाचीन साहित्य-सेवी देश भक्तोंके तैल चित्र लगे हुए थे।

प्रवेशद्वारके ठीक सन्मुख भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी दिव्य मूर्ति शोभा पाती थी। इसके अतिरिक्त बङ्किमचन्द्र, विद्यासागर, प्रताप-नारायण, बालकृष्ण भट्ट आदि आधुनिक तथा तुलसीदास, विहारी लाल, सूरदास, केशवदास, देव, तथा राष्ट्रीय कवि भूषण आदि प्राचीन साहित्य-सेवियों एवं लोकमान्य पं० बालगङ्गाधर तिलकके दर्शनीय चित्र यथा स्थान टँगे हुए थे। ग्रन्थों-का भी बड़ा जबर्दस्त संग्रह था। संसारकी प्रायः सभी उन्नत भाषाओंकी उत्तमोत्तम पुस्तकें वहाँ मौजूद थीं। और सबसे आश्चर्य्यकी बात तो यह थी कि देशके एक कोनेमें अवस्थित उक्त आश्रममें जहाँका मनुष्यकी कौन कहे, पशु-पक्षीतकको पता न था, प्रायः सभी सामयिक पत्र तथा पत्रिकाएं देखी गईं। यह भी ज्ञात हुआ कि नियमानुसार सभी आश्रमवासी वहाँ आकर पठन पाठन किया करते हैं। प्रत्येक रविवारको परिषद्‌का अधिवेशन होता है। सभी कोई वहाँ एकत्र होते हैं। आधुनिक घटनाओं तथा आवश्यकताओंपर गम्भीरता पूर्व्वक आलोचना प्रत्यालोचना होती है और बड़े बड़े विवेचनापूर्ण प्रबन्ध पढ़े जाते हैं। आश्रमके विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिये प्रतिदिन दो घण्टे क्लास भी होती है, जहाँपर बड़े बड़े प्रख्यात विद्वान-सन्यासी धर्म्म-शास्त्र राजनीति तथा साहित्यकी शिक्षा देते हैं।

परिषद्‌का भली भाँति दिग्दर्शनकर इनलोगोंने दूसरे विभागमें प्रवेश किया। यहाँ हस्त कौशलका अपूर्व्व दृश्य था। कितनी ही ब्रह्मचारिणियां तथा ब्रह्मचारी चित्रकला सीख रहे थे। कितनी

ही देवियाँ उत्तमोत्तम चित्र निर्माण कर रही थीं। चित्रशालामें उत्तमोत्तम चित्र भी लगे हुए थे। एक बड़े विशाल चित्रमें उक्त आश्रमका मानचित्र बना हुआ था जिसे देखकर वहाँके सारे विभाग आँखोंके सामने आ जाते थे। उसे देखकर एक अपरिचित व्यक्ति भी आश्रमके कोने कोनेतकका हाल जान सकता था। एक दूसरे चित्रमें वीरवर अभिमन्यु युद्धवेशमें सज्जित माता सुभद्रासे आचार्य्य द्रोणका गर्व खर्व करनेके लिये आदेश ले रहे थे। उसे आश्रम-वासिनी एक देवीने निर्माण किया था। ऐसा उत्तम चित्र था कि उसे देखते ही कायरके भी हृदयमें वीरभाव उदय हो उठता। इसी प्रकार किसी चित्रमें भगवती भारती तथा भगवान् शङ्करका शास्त्रार्थ होना दिखाया गया था, किसी चित्रमें महारानी पद्मिनी युद्ध-वेशमें सज्जित दुर्धर्ष अलाउद्दीनकी सैन्यका संहार करती दिखाई गई थीं।

वहाँसे चलकर उन लोगोंने आयुर्वेद-भवनमें प्रवेश किया। यहाँका ढंग एकदम निराला था। प्राच्य तथा पाश्चात्यका अपूर्व्व संमिश्रण था। यहाँपर लोग, रोगोंकी चिकित्साके नये नये उपाय निकालनेमें निरत थे। आयुर्वेदोक्त सभी औष-धियाँ नवीन ढङ्गसे निर्माणकी जाती थीं। वहाँकी सभी बातें कमलाकिशोरने बड़े ध्यानसे देखीं और बड़ा सन्तोष प्रकट किया।

इसके उपरान्त इन लोगोंने शिल्प-भवनमें प्रवेश किया। देश-भक्त कमलाकिशोरकी हृदय-कली खिल उठी। जिस बात-की बड़ी आवश्यकता थी और जिसका उनके पूज्य पिता पण्डित

राजकिशोरजीने कुछ कुछ प्रचार भी किया था, वही कार्य्य नवीन ढङ्गसे सफलता पूर्व्वक होते देखकर इन्हें बड़ा आनन्द मिला। कितने ही चर्खे चल रहे थे। सूत कात कातकर ढेर लगायी जाती थी और फिर उसीसे कपड़े बुने जाते थे। यहाँ-पर ऐसे उत्तम कपड़े तैयार होते देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने स्वप्नमें भी न सोचा था कि हाथसे इतने उत्तम कपड़े बन सकते हैं। कमलाकिशोरको अपार आनन्द हुआ। उन्हें भारतके भविष्यपर पूर्ण विश्वास हो गया। वे सोचने लगे कि अब संसारकी कोई शक्ति भारतके उन्नति-पथपर संकट नहीं ला सकती। भारतवासी कर्त्तव्य-कार्य्य भूले हुए थे। अपने प्राचीन गौरवको भुलानेहीके कारण उनकी यह दशा हो गई है। यदि वे अपने पैरोंपर आप खड़े होना सीखलें तो फिर रत्न-प्रसूता भारत-वसुन्धराको कमीही किस बातकी रह जाय।

सबके पश्चात् इन लोगोंने कृषिशाला देखा। यहाँका कार्य्य और भी सन्तोषदायक था। खेतीका काम आधुनिक वैज्ञानिक उपायोंद्वारा सिखाया जाता था। भारत कृषि-प्रधान देश है। खेती ही उसका प्राण है। इस विद्याके भूल जानेहीसे आज भारत-सन्तानोंको दाने दानेके लिये तरसना पड़ता है। वही सैकड़ों वर्षोंकी सड़ी गली पुरानी प्रथा अबतक प्रचलित है। नये ढङ्गसे कार्य्य करना भारत-वासियोंने मानो सीखा ही नहीं। इसीसे शस्य-श्यामला वसुन्धराकी उर्वराशक्ति एकदम नष्ट हो गयी है। उसीके प्रतिकारके लिये उस विभागकी स्थापना की गयी

थी। वहाँपर कृषि-विद्या-विषयक सभी आवश्यकीय ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिक रीतिसे कराया जाता था। जमीनको पहचानने, उसकी निर्बलता दूर करने तथा प्राकृतिक विघ्नोंसे फसलको बचानेके उपाय सिखाये जाते थे। वैज्ञानिक प्रतियोगिताके कारण देशका चीनी तैयार करने तथा रङ्ग बनानेका व्यापार नष्ट होकर दूसरोंके हाथ चला गया है! उसे पुनर्जीवित करनेके लिये सन्यासी-सङ्घने नवीन ढङ्गसे उसकी भी शिक्षाकी व्यवस्था की थी।

इस प्रकार सारे विभागोंका निरीक्षण करते तथा उनके अध्यक्षोंसे वार्तालाप करते करते शाम हो गई। सभी कार्य्य स्थगित हो गये। आश्रम-वासी शौचादिसे निवृत्त होने तथा सन्ध्या वन्दन करने चले गये। कमलाकिशोर भी स्वामीजीके पीछे पीछे मनही मन तर्क वितर्क करते हुए प्रफुल्ल चित्त पूर्व्वोक्त स्थानपर लौट आये।

सोलहवाँ परिच्छेद।

प्रातःकाल हो चुका था। भास्कर अपनी नवोदित किरणें क्रमशः विस्तार कर रहे थे, जिनके प्रकाशसे सारा आश्रम जगमगा उठा था। अन्य दिनोंसे उस दिन वहाँकी शोभामें कुछ विशेषता थी। एक नवीन प्रकारकी स्फूर्ति दिखाई देती थी। सारा आश्रम फूल पत्ते तथा वन्दनवारोंसे सुसज्जित किया गया था। आश्रमवासी उत्फुल्ल चित्त अपने अपने कार्य्योंमें लगे हुए थे। उन लोगोंके लिये वह दिन बड़ा शुभ था। उसी दिनसे कितनेही आश्रमवासी अपनी शिक्षा समाप्तकर कर्म्म-भूमिमें पदार्पण करनेवाले थे।

देखते देखते आश्रमकी विशाल यज्ञशाला गैरिक-वस्त्र-धारिणी देवियों तथा सन्यासियोंसे खचाखच भर गयी। क्याही हृदयग्राही दृश्य था। एक ओर संसार-त्यागिनी आर्य्य-बालाओंकी श्रेणी-बद्ध कतार शोभा पाती थी और दूसरी ओर आर्य्यकीर्त्तिका स्मरण करानेवाला सन्यासी-सङ्घ। बीचमें एक बड़े विशाल मञ्चपर शुभ्र-केश, अत्यन्त वृद्ध; पर तेजवान महापुरुष गम्भीर भावसे बैठे हुए थे। इनकी भव्यमूर्त्तिके दर्शनकर हृदयमें अपूर्व्व भक्तिका सञ्चार होता था। महापुरुषकी दाहिनी

और कमलाकिशोरको आश्रममें लाने तथा वहाँका परिदर्शन करानेवाले पूर्व्व परिचित महात्मा बैठे हुए थे। क्याही दिव्य मूर्त्ति थी! बाईं ओर सरस्वती स्वरूपिणी परम रूपवती एक देवी शान्त भावसे बैठी हुई थीं। उनके मुँहसे विचित्र-प्रभा छिटकती थी।

कमलाकिशोर भी एक कोनेमें बैठे यह सब देख रहे थे। उनके हृदयमें नाना प्रकारकी भावनाएँ उठ रही थीं।

"हरे भगवन्! यह क्या लीला है? मैं सोता हूं अथवा जागता। क्या मैं उसी पृथ्वीपर हूं, या सदेह स्वर्ग लोकमें आकर यह अपूर्व्व दृश्य देख रहा हूं? अजब गोरख-धन्धा है। कुछ समझमें नहीं आता। जिन संसार-त्यागी पुण्य-श्लोक ऋषियोंकी पवित्र गाथाएँ प्राचीन ग्रन्थोंमें पाठ किया करता था, वही आज प्रत्यक्ष देख रहा हूं। पर यहाँ तो कुछ और भी विशेषता है। ये कोरे संसार-त्यागी ही नहीं हैं। इनके भावोंका अनुभव कर आश्चर्य्य चकित होना पड़ता है। इन लोगोंमें प्राचीनता तथा नवीनताका अपूर्व्व संमिश्रण है। संसार-त्यागी हो इन्हें केवल मुक्तिहीका ध्यान नहीं है। इनके हृदयोंमें मातृभूमिके उद्धारकी ज्वाला जल रही है। इस आश्रमके प्रवर्त्तक अवश्यही यही महात्मा हैं। यह हैं कौन? इनकी दाहिनी-ओर बैठे हुए हमें यहाँ लानेवाले स्वामीजी कुछ कुछ पूर्व्व-परिचितसे मालूम होते हैं। उनकी बात चीतसे भी ऐसा ही आभास होता है। बाईं ओर बैठी हुई देवी यदि मेरी बुद्धि धोखा नहीं देती तो मेरी अनुजा विद्यावतीसी मालूम होती है। पर नहीं यह मेरी भूल है। वह इस सुदूर

दुर्ग सवनमें कैसे आई होगी। आज इतने दिन हो गये जबसे वह गयी, तबसे सारा देश तत्र तत्रकर खोज डाला गया ; पर उसका कहीं कुछ भी पता न मिला। वह अवश्यही सांसारिक आघात: प्रत्याघातोंको सहन न कर सकनेके कारण अपने शरीरका विनाश कर चुकी होगी। पर हाँ, स्मरण आ गया! जाते समय वह अपने पत्रमें लिख गयी थी कि आशीर्वाद दीजिये कि मैं भारतकी अनाथ अबलाओंका कल्याण करनेमें समर्थ हो सकूँ। इसके मुँहकी बनावट तथा आकर्ण विस्तृत नेत्र प्रायः वैसेही हैं। मैं स्वप्न देखता हूँ, या अवश्य ही यह विद्या है। क्या जिसकी खोजकर मैं एकदम निराश हो चुका था, वही मेरी विद्या यहाँ **'वन-देवी'** के रूपमें उपस्थित है? यदि हाँ, तो हो न हो स्वामीजी भी हमारे देवीशङ्कर हैं। इस प्रकार वे सोच ही रहे थे कि यकायक घंटी बजी। सभी सजग हो उठे और उपरोक्त वनदेवी हाथमें वीणा लिये मंचके सम्मुख आकर खड़ी हो गई। उनकी अवस्था अभी पचीससे ऊपर नहीं है। क्या ही दीप्तिमान् शरीर है! बड़ी बड़ी आखों तथा प्रभा-पूर्ण मुख-मण्डलसे गम्भीरता टपकी पड़ती है। कुंचित काले केश पीठपर बिखरे हुए हैं? क्या ही सीधा सादा वेश है! तत-काञ्चनवत् गोरे तथा गुलाबी रङ्गपर गेरुआ रङ्गकी साड़ी फूट फूटकर निकल रही थी उन्होंने अपनी सुरीली आवाजसे इस प्रकार मातृ-वन्दना प्रारम्भ की—

देवी विश्व-विमोहिनी, रुचिकरी-शोभा-सुधा-निर्झरी।
नाना-चित्र-विचित्र-दृश्य-जड़िता, सौन्दर्य्य रत्नाकरी॥

लक्ष्मी-अक्षय भूषिता, भगवती मातान्नपूर्णेश्वरी ॥
वन्दे भारत-भूमि विश्व-जननी प्रत्यक्ष विश्वेश्वरी ॥१॥
ब्रह्म-ज्ञान विहारिणी, अघहरी, पुण्य प्रभा-वाहिनी ।
नित्यानन्दमयी, सु-वेद-मुखरा, मोहान्धतानाशिनी ॥
विज्ञानोद्भव-कारिणी, सु-कविता-संगीत-कादम्बिनी ।
वन्दे वीर-महाबली-सुतवती दुर्ज्जेय कात्यायिनी ॥२॥
आद्याशक्ति सुरूपिणी, अभयदा, देवासुराराधिता ।
ज्ञानालोक विकासिनी, गुणमयी, सर्वेश-लीलाश्रिता ॥
सद्धर्म्म प्रतिमा,प्रशान्त वदना, शान्तिप्रदा, सुस्मिता ।
वन्दे दुर्गति नाशिनी, सुपथगा, त्रैलोक्य-संपूजिता ॥३॥
वन्दे पत्र-फलादि-पुष्प-भरिता शोभायमाना धरा ।
शस्यान्नादि-सुपूर्ण-क्षेत्र-जड़िता, श्यामायमाना धरा ॥
विद्युद्दाम-विलग्न-नीरद छटा-आच्छन्न-नीलाम्बरा ।
वन्दे ग्राम-पुरी-विशाल-नगरी-संशोभिता श्रीधरा ॥४॥
चन्द्रार्क-ग्रह-मण्डली-परिवृता, साद्यन्त नित्योज्ज्वला ।
वातान्दोलित-सिन्धुराज-लहरी-संसेविता निर्मला ॥
नाना-वर्ण विहङ्ग-केलि-कलिता-रम्याटवी कुन्तला ।
वन्दे षड् ऋतु-शालिनी मलयजा संसेव्य, दिव्याञ्चला ॥५॥
कल्लोल ध्वनि पूर्ण निर्भर-नदी मुक्ता-मनोहारिणी ।
पीयूषोपम-स्निग्ध पुण्य-सलिला श्रोतस्विनी-धारिणी ॥
रत्नोत्पादन-कारिणी, सुखकरी, सत्कीर्ति विस्तारिणी ।
वन्दे शैल-किरीटिनी, अनुपमा, माता जगत्तारिणी ॥६॥

—श्यामसुन्दर खत्री ।

उनकी अमृतमयी वाणीसे सभा-मण्डप गूँज उठा। मातृ-भूमिके प्रेमसे सबके हृदय गद्गद् हो गये। उनलोगोंने उठकर उन्हें भक्ति पूर्व्वक प्रणाम किया। वे धीर-गम्भीर भावसे अपनी जगह जा बैठीं। इसके उपरान्त शुभ्र-केश महाप्रभु सच्चिदानन्दने गरजती हुई गम्भीरवाणीसे इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—

भारत माताके पुत्रो तथा पुत्रियो !

अयोध्याजीके उत्तर पश्चिम कोनेपर अत्यन्त प्राचीन कालसे एक छोटासा राज्य था। उसके प्रतिष्ठाता यशोवर्म्मन देव आर्य्य रामचन्द्रके वंशजोंमेंसे थे। हिन्दू राजाओंकी राज्य व्यवस्था नष्ट हो जाने तथा विदेशियोंका पूरी तौरसे दबदबा हो जानेसे शताब्दियोंतक उक्त राज्य अपना गौरव पूर्व्ववत् ही बनाये रहा। कितने ही दुर्धर्ष, प्रबल-पराक्रान्त आक्रमणकारियोंने उसपर कितनेही बार आक्रमण किये ; पर उसके क्रमागत चतुर उत्तराधिकारियोंके सामने उनकी एक न चली। उसकी प्राचीन कीर्ति तथा स्वाधीनता अपहरण करनेके लिये कितनोही बार सम्मि-लित तथा सुसंगठित प्रयत्न किये गये, पर वहाँके कूटनीतिज्ञ तथा प्रजा प्रिय शासकोंने सबको नीचा दिखाया। पर कालकी गति बड़ी प्रबल होती है। कोई वस्तु कभी एक दशामें नहीं रहती। धीरे धीरे समयने पलटा खाया। अयोग्य तथा विलासी शासकों-का प्रादुर्भाव हुआ। प्रजापर नाना प्रकारके अत्याचार होने लगे। फल स्वरूप राज्यका शासन-सूत्र ढीला हो गया।

आर्य्य शास्त्रोंके अनुसार राजा प्रजाका पिता है। प्रजाका

मनोरञ्जन करना ही उसका धर्म्म है। महाराज रामचन्द्र कहा करते थे कि जिस राजाके राज्यमें प्रजा दुखी रहती है, वह राजा नर्क गामी होता है और उसका राज्य क्रमशः लोप होता जाता है। यही दशा उस प्राचीन राज्यकी हुई। अयोग्य अधिकारियोंके अत्याचारसे प्रजा पीड़ित हो उठी। राजापर उसकी श्रद्धा न रही। उसका संगठन टूट गया। प्राचीन राज्य-व्यवस्था नष्ट हो गई।

कई पीढ़ियोंके पश्चात् वहाँका शासन-भार हमारे पूज्य पिताके ऊपर आ पड़ा। वे जैसे प्रतापी तथा शक्तिशाली योद्धा थे, वैसेही धर्म्मपरायण तथा कूटनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने उस अव्यवस्थित राज्यके पुनर्गठनका कार्य्य बड़ी तत्परताके साथ आरम्भ किया था। उन्हें सफलता भी हो चुकी थी। पर ईश्वरको यह मंजूर न था। मनकी मनहीमें रह गई। वे अकालहीमें काल-कवलित हो गये। उस समय अवधमें अत्याचारी विलास-मूर्त्ति अयोग्य शासकोंका राज्य था। मेरी अवस्था बहुतही छोटी थी। अतएव पिताकी मृत्युके पश्चात् शत्रुओंकी खूब बन आयी। उनलोगोंने उत्तरोत्तर कई वार आक्रमण कर उस प्राचीन राज्यका अन्त कर डाला। पुत्रो, जैसा मैं कह चुका हूं, उस समय मैं नितान्त बालक था। माताका पहले ही शरीरान्त हो चुका था। बूढ़े मन्त्री पण्डित कमलाकान्तने किसी प्रकार मेरी रक्षा की। वे मुझे लेकर काशीजी चले गये और वहीं रहने लगे। जाते समय वे घरकी कुछ बहुमूल्य चीजें लेते गये थे। उन्हें बेचकर अनन्त धन-राशि प्राप्त हुई। हमलोगोंका निर्वाह बड़ी उत्तमता पूर्व्वक

होने लगा। मेरी शिक्षा दीक्षाका उत्तम प्रबन्ध किया गया। पढ़नेमें मेरी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। शिक्षकोंका मुझपर बड़ा प्रेम था। वे कहा करते थे कि यह बालक बड़ा होनहार प्रतीत होता है। इसमें भावी महत्ताके सभी लक्षण हैं। जैसे जैसे मैं बढ़ता गया मुझे सभी बातोंका ज्ञान होता गया। प्राचीन इतिहास ग्रन्थोंमें वर्णित तत्कालीन आर्य्य-समाज तथा वर्तमान् दुर्दशा-ग्रस्त हिन्दू-समाजकी तुलना कर मेरा कलेजा दहलने लगा। मैंने मनही मन इस पतनका कारण भी जान लिया और उसे दूर करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। पहले तो अपने खोये हुए राज्यके प्राप्त करनेकी इच्छा प्रबल हुई; पर अवस्था बदल चुकी थी। देशके अधिकांश भागोंकी शासन-सत्ता तो अँग्रेजोंके हाथमें पहले ही आ चुकी थी। केवल अवधमें ही नवाबोंका नाम मात्रका शासन-छुककर लिया गया था। अस्तु। पर्व्वतराज हिमा-लयसे लेकर कन्याकुमारीतक एक शासन-सूत्रमें बँध जानेके कारण भावी भारतीय महाराष्ट्रके निर्माणका शिलारोपण हो चुका था। किसी छोटे राज्यके स्थापन करनेकी कल्पना करना भी भारी भ्रम था। पुत्रो, मुझे भारतके भविष्यपर दृढ़-विश्वास हो गया। ईश्वर जो करता है, वह अच्छा ही करता है। सहस्रों वर्षोंसे भारतसे चक्रवर्तित्व नष्ट हो चुका था। छोटे बड़े अगणित राज्य स्थापित हो गये थे। भारत-वसुन्धरा कलह तथा हत्या-काण्डोंका केन्द्र बनी हुई थी। ईश्वरने सम्भवतः इसका दूसरेही साधनोंसे उद्धार करना निश्चित किया होगा यह सोचकर हृदय

कुछ ठण्डा हुआ। पर एक सच्चे क्षत्रियके लिये विना जननी जन्मभूमिके कष्ट निवारण किये सांसारिक ऐश्वर्य्योंका उपभोग करना घोर पाप है। यह ध्यान करते ही विषय-वासनाओंसे मेरा चित्त विरक्त हो गया। अतएव, मैं सन्यास लेकर पठन पाठन, भ्रमण तथा तीर्थाटनमें जीवन व्यतीत करता हुआ समयकी गतिपर दृष्टि रखने लगा।

भारतमें क्रमशः नये नये भावोंका प्रादुर्भाव होने लगा। तत्का-लीन उदार शासकोंने भारतीय प्रजाके कल्याण साधनके नये नये उपाय किये। शिक्षाका प्रचार होने लगा समयानुसार कितनेही राजनीतिक, साहित्यिक तथा धार्म्मिक कर्म्मयोगियोंका प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय नवीन ज्योति जगमगा उठी। प्राचीन गौरवके गीत गाये गये। देशभरमें जातीयताकी लहर बह उठी। सभीको वर्तमान दीन दशासे निकलकर प्राचीन गौरव प्राप्त करनेकी धुन समायी। मैं समय समय पर उपरोक्त महानुभावोंसे मिलता और जो कुछ बनता उनकी गुप्त रीतिसे सहायता भी किया करता। पर मैं कभी अपनेको प्रकाश न होने देता।

देशमें शिक्षितोंकी संख्या जितनी बढ़ती गयी, देश सेवाका भाव उतना ही प्रबल होता गया। उसके दुःखोंको दूर करनेके बहुतसे प्रयत्न भी किये गये। पर इतने बड़े महादेशको अवनतिके गहरे गढ़ेसे निकालकर उन्नतिके उच्च शिखरतक पहुंचानेके लिये वे पर्य्याप्त न थे। मुझे यह अभाव बराबर खटका करता। मेरी यह दृढ़ धारणा थी कि जबतक जन-साधारणमें जातीयताके पवित्र

भाव उत्पन्न न किये जायँगे तथा उनके वास्तविक कामोंके निवारण करनेके उपाय न किये जायँगे, तबतक वास्तविक उन्नतिकी आशा आकाश-कुसुमवत् है। मेरी बड़ी अभिलाषा थी कि देशमें संसार-त्यागी सन्यासियोंका एक ऐसा सङ्घ स्थापन किया जाय, जिसके सदस्य निष्काम भावसे गाँव गाँव घूम घूमकर असहाय भाइयों तथा अनाथ बालक बालिकाओंकी सुध लें, उनकी विपदाओंके दूर करनेका प्रयत्न करें; उन्हें जीवनोपयोगी आवश्यकीय वस्तुओंके उत्पादन करनेका उपाय बतावें और उनके पीछे अपना सर्वस्व न्योछावर कर उन्हें उनके अधिकारोंका ज्ञान करावें। जिससे देशका सच्चा कल्याण हो।

मैं ऐसे विचारोंको कार्य्य-रूपमें परिणत करनेके उपाय सोच ही रहा था कि अवध-प्रान्तमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा। अनावृष्टिके आतङ्कसे भारतका कोना कोना काँप उठा। श्रमजीवी तथा किसान दाने दानेको मोहताज हो गये। उन्हें अपने बच्चोंतकका पालन करना दुस्तर हो गया। असंख्यों अभागे प्राणियोंको भूखके मारे प्राण दे देने पड़े। वह समय घोर विपत्तिका था। विचारे किसानोंको एक ओर भरपेट अन्न न मिलता और दूसरी ओर राजस्व न दे सकनेके कारण मदान्ध जमींदारोंके लम्पट कर्म्मचारियोंका अत्याचार सहना पड़ता। उनका एक ईश्वरको छोड़कर और कोई सहारा न था। इस समय एक देवीके हृदयमें इनके कष्टोंको देखकर दयाका सञ्चार हुआ। उसका हृदय इनकी दुःखाग्निसे पिघल गया। उसने

प्राण प्यारे पतिके सहवासरूपी स्वर्गीय सुखको लात मारी और वीरवाणीसे उन्हें सूर्य्यकी कड़ी धूपमें गाँव गाँव घर घर जाकर असहायोंकी विपद् भंजन करनेका प्रोत्साहन दिया। उस महत् आत्माने भी वैसा ही किया। उनके कष्टोंके निवारणके लिये उसने सिंहके समान जमीन आसमान एक कर दिया। मैं अज्ञात भावसे वहाँ पहले ही पहुँच गया था। मेरे सहयोगसे उन्हें बड़ा बल मिला। शीघ्र ही सारे कष्टोंका शमन हो गया।

मेरी सङ्गतिसे उपरोक्त नवयुवकके विचारोंमें भारी परिवर्तन हो गया। उसने चिरकालके लिये अपनी अद्वितीय रूपवती तथा असाधारण गुणवती विदुषी भार्य्याका मोह त्याग आजन्म ब्रह्मचारी रहकर देशमें आमूल परिवर्तनकी दृढ़ धारणा कर ली। पुत्रो तथा पुत्रियों! मेरी दाहिनी ओर सिंहके समान बैठे हुए तुमलोगोंके योग्य पथ-प्रदर्शक श्रीस्वामी निर्भयानन्दजी ही उक्त नवयुवक देवीशङ्करजी हैं तथा बायीं ओर धीर गम्भीर भावसे बैठी हुई महामाया भगवती भारती ही प्रातःस्मरणीय पण्डित रामकिशोरजीकी दुहिता तथा पहलेके महाराज देवीशङ्करजीकी अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती विद्यावती देवी हैं। धन्य है वह वसुन्धरा जहाँ उस देवीने जन्म लिया। जिस उदारता और त्यागके साथ इस वीर नारीने परोपकारमें प्रवृत्त होनेके लिये स्वामीको प्रोत्साहन दिया वह शत मुखसे प्रशंसा करने योग्य है।

स्वामी निर्भयानन्दके साथ घूमता हुआ मैं यकायक यहाँ आ पहुँचा। उस समय यहाँ निबिड़ वन था। भयावने हिंस्र

जन्तुओंका वास-स्थान था। धीरे धीरे हमलोग इसे आश्रममें परिणत करने लगे। एक एककर सभी आवश्यक वस्तुएं एकत्र होने लगीं। कई एक सर्व-त्यागी महात्माओंका भी सहयोग मिला। कुछ कुछ काम भी होने लगा। पर सैकड़ों सहस्रों वर्षोंकी बिखरी भारतीय शक्तिको सङ्गठित करने तथा उसे वर्त्तमान अधोगतिसे उठाकर सभ्यताके उच्च शिखरपर बैठानेके लिये जिस स्वर्गीय शक्तिकी आवश्यकता थी, उसका हमलोगोंमें अभाव था। इसीलिये यद्यपि कार्य्य होता था; पर उतने जोरसे नहीं। प्रिय पुत्रों, कोई भी कार्य्य यदि सत्यपर दृढ़ रहकर शुद्ध चित्तसे किया जाय तो वह अवश्य सफल होता है। फिर मार्गमें कितनी ही बाधाएँ क्यों न पड़ें। अस्तु, ईश्वरने हमलोगोंका साथ दिया।

एक दिन वर्षा-कालमें मैं यहीं निकटवर्ती वनमें अकेले ही भ्रमण करने चला गया था। घूमते घूमते बहुत दूर निकल गया। लौटते समय रात हो गई। यकायक चारों ओरसे सघन मेघ-मालाएँ घिर आईं। घोर अन्धकार छा गया। बिजली चमकने लगी और साथ ही घोर वृष्टि होने लगी। मुझे एक सघन वृक्षका आश्रय लेना पड़ा। वर्षाका शमन होनेपर मैं अपनी प्यारी वीणाको बजाता तथा भगवान चक्रपाणिकी गुणावली गाता चला आता था कि किसी असहाय अबलाकी कातर ध्वनि मेरे कानोंमें पड़ी। वह व्यथित होकर कह रही थी—"प्रभो! क्या परोपकार करनेका यही पुरस्कार है?" मैं शीघ्रतासे उसकी

ओर गया। अहा! एक परम रूपवती रमणी नाना प्रकारकी विपदाओं तथा हिंस्र-जन्तुओंसे घिरी, वर्षासे सताई पृथ्वीपर पड़ी हुई छटपटा रही थी। उसकी साड़ी कटीली झाड़ियोंसे उलझ उलझकर टूक टूक हो गई थी। पर ऐसी अवस्थामें भी उस वीर बालाके मुखसे एक प्रभा-पूर्ण ज्योति निकल रही थी। पुत्रो तथा पुत्रियो! तुम लोगोंको विदित हो गया होगा कि तुम लोगोंकी माता भगवती भारती ही वह देवी थीं।

मुझे दैवी शक्तिका बल मिला। हमलोगोंका कार्य्य द्विगुणित उत्साहसे होने लगा। हम और स्वामी निर्भयानन्द गावों तथा नगरोंमें जाते, नवयुवकोंसे मिलते और उन्हें पवित्र गीताका उपदेश सुनाकर मातृ-भूमिकी सेवाके लिये प्रोत्साहित करते। रत्न-गर्भा भारत-वसुन्धरामें वीर हृदयोंकी कमी नहीं है। दलके दल नवयुवक माताकी पुकार सुनकर हमारे साथ मिलने लगे। हमलोगोंकी संख्या खूब बढ़ी। फिर तो हम लोग सारे देशमें घूमने और अपने सत्य-धर्मकी शिक्षा देने लगे। माता भारतीकी प्रेरणासे हमें कई सुयोग्य देवियोंका भी सहयोग मिला। देशकी अनाथा अबलाओंको अत्याचारसे बचाकर मनुष्यों-के समान ही उन्हें भी सेवा-मार्गपर लानेका हम लोगोंका प्रधान लक्ष्य था। अतएव, जहाँ कहीं किसी असहाय बालाको सामाजिक अत्याचारके कारण कुपथगामिनी होते देखते तो उससे मिलते, उससे समझा बुझाकर यहाँ लाते और सत्मार्गमें लगाते। इस प्रकार कितनी ही देवियोंको दुष्टोंके पंजेसे छुड़ा-

कर मातृ-भूमिकी सेवामें लगाया गया है। यहाँकी शिक्षासे उनमेंसे अधिकांशको तो अब देवत्व प्राप्त हो चुका है। भगवती भारतीकी असाधारण शक्ति तथा प्रौढ़ युक्तियोंने जो कुछ किया है वह तुमलोगोंको अविदित नहीं है। पुत्रियो! तुम लोगोंमेंसे अधिकांश ही भुक्त भोगिनी हैं। सोचो तो सही उस विपद्-कालमें ठीक समयपर तुमलोगोंका उद्धार न किया जाता तो तुमलोगोंकी क्या अवस्था होती।

ईश्वरकी कृपासे आज तुमलोगोंमेंसे अधिकांशकी शिक्षा समाप्त हुई। अब तुमलोगोंको ऐसे दुर्गम पथपर चलना होगा, जहाँ काँटे बिखरे हुए हैं। तुमलोगोंकी कठिन परीक्षाका समय आया है। मातृ-भूमिके उद्धारका जो महान् व्रत तुमलोगोंने अवलम्बन किया है, उसे शरीर रहते परित्याग न करना। सत्य पथपर डटे रहकर यदि मृत्युका भी सामना करना पड़े तो भी भयभीत न होना। सन्यास धर्म्म बड़ा पवित्र धर्म्म है। इसका बड़ा महत्व है। भारतवासियोंकी उसपर बड़ी आस्था है। ईश्वर-चिन्तनके साथ साथ लोक शिक्षण भी सन्यासीका प्रधान कर्म्म है। प्राचीन भारतमें ऐसा ही हुआ करता था। पर समयके फेरसे अब वह अवस्था नहीं रही। सन्यास आश्रमको कलङ्कित करनेवाले लाखों धूर्त आज देशके भार स्वरूप हो रहे हैं। धर्म्मके नामपर अनेकानेक पापाचार होते हैं। धर्म्माचार्य्य पाखंडी बनकर घोर अनर्थ कर रहे हैं। पुत्रो! तुमलोगोंको चाहिये कि उन्हें उनकी अधोगतिका ज्ञान कराकर सन्मार्गमें लाओ। माता उत्कंठा पूर्व्वक

तुमलोगोंके मुँहकी ओर देख रही है। जाओ उसके सङ्कट दूर करो। असहाय तथा अशिक्षित जनताका साथ दो। उसमें शिक्षा प्रचार करते हुए जातीयताके पवित्र भाव भर दो।

तुमलोगोंको यहाँपर केवल उन्हीं विषयोंकी शिक्षा दी गई है, जिनकी इस समय देशमें बड़ी आवश्यकता है। सारा देश रोग, शोक, अकाल आदिके कारण निर्बलताका शिकार बनकर पर मुखापेक्षी हो रहा है। आवश्यकता है कि इस समय तुम-लोग देशके कोने कोनेमें कुटियाँ बनाकर निवास करो और फिर निर्भयता पूर्व्वक शिक्षा प्रचार करते हुए जनताको प्राचीन साहित्य प्राचीन इतिहास, भूली हुई चित्रकला, आयुर्वेद, विज्ञान, वस्त्र-निर्माण तथा कृषि विद्याका ज्ञान कराओ।

प्राचीन साहित्य तथा इतिहासके पठन-पाठनसे उन्हें अपने पूर्व्वजोंके गौरवका ज्ञान होगा और वे समझेंगे कि उनकी कितनी हीनावस्था हो गई है। फिर आपही आप उनमें संसारकी अन्यान्य जातियोंके समकक्ष होनेकी प्रबल वासना उत्पन्न होगी।

चित्रविद्याका सांसारिक प्रगतिके साथ घना सम्बन्ध है। मानव सभ्यता जितनी बढ़ती जाती है, चित्रविद्याका उतना ही विकाश होता जाता है। इतिहासमें इसका बड़ा महत्व है। तत्कालीन समाजका यह प्रतिबिम्ब है। कौन जाति किस समय कितनी सभ्य थी, इसके जाननेके लिये यह सबसे बड़ा साधन है। जनतापर भी इसका अप्रत्यक्ष रूपसे गहरा प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार कवि अपनी कविताद्वारा जनताके हृदयमें नवीन

भावोंका सञ्चार करता है, उसी प्रकार चतुर चित्रकार अपने चित्रोंद्वारा उसके चित्तपर गहरा प्रभाव उत्पन्न करता है। आज इस गिरी हुई दशामें हमारी प्राचीन सुदशा तथा सभ्यताका प्रत्यक्ष रूपसे सच्चा प्रतिबिम्ब दिखानेका अधिकांश श्रेय उसी विद्याको है। उस समयकी रीति-रिवाज वेश-भूषा तथा पहनावोंको देखकर सबको हमारी प्राचीन उच्चता स्वीकार करनी पड़ती है, पर हमारी अवनतिके साथ ही साथ इसका भी ह्रास हो गया। आज इसके जानकार अँगुलियोंपर गिने जाते हैं।

इस अभावसे लाभ उठाकर विरोधियोंने जो हमारा अपकार किया है, उसका अनुभव कर हृदयपर बड़ा भारी आघात पहुंचता है। संसारकी प्रगतिशील जातियोंके सामयिक पत्रों तथा पत्रिकाओंको देखो। उनमें जहाँ उनके देशकी बनी ठनी सुकुमारी युवतियों तथा अँकड़ते हुए युवकोंके चित्र दिखाई पड़ेंगे वहाँ हमारे देशकी किसी गरीब कुँजड़िन अथवा किसी पहाड़ी कोल भील या किसी दीनहीन वस्त्र-विहीन पथके भिखारीका चित्र मिलेगा। धूर्त ईसाई धर्म-प्रचारकोंने अपने देशकी भोलीभाली जनतासे न ऐंठनेके लिये धर्मप्रचार द्वारा हमलोगोंको सभ्य बनानेका ढँकोसला रच रक्खा है। हमें असभ्य बर्ब्बर आदि उपाधियोंसे विभूषित कर तथा उसी प्रकार मनगढ़न्त कहानियां रचकर उन लोगोंने वहाँवालोंके हृदय पहलेहीसे कुसंस्कार पूर्ण बना रक्खे हैं। इस प्रकारके चित्रोंसे उनके वे विचार और भी दृढ़ हो जाते हैं। वे हमलोगोंको

असभ्य जङ्गली समझकर घृणा करने लगते हैं । इसलिये बड़ी भारी आवश्यकता है कि तुमलोग अपने प्राचीन इतिहास तथा वर्तमान समाजके आधारपर सुन्दर सुन्दर चित्र निर्माणकर संसारके प्रत्येक देशमें उनका खूब प्रचार कराओ ; जिससे वहाँवाले यह समझ जायँ कि जिस समय संसारके अधिकांश मनुष्योंको वृक्षोंकी छालके सिवाय कपड़ों आदिका स्वप्नमें भी ध्यान न था, उस समय हम पूर्ण सभ्य थे और आज भी यदि दूसरोंसे बढ़कर नहीं तो किसी बातमें कम भी नहीं हैं ।

खेती भारतका प्रधान अवलम्ब रही है । इसके बिगड़नेहीसे हमारी आज इतनी दीन दशा है । सारा संसार नये नये वैज्ञानिक उपाय निकालकर इसमें खूब उन्नति कर रहा है । पर हमारे यहाँ वही सैकड़ों वर्षकी पुरानी प्रथा प्रचलित है । उत्पादन शक्तिका प्रायः नाश हो चुका है ; पर बेचारे दीन किसानोंको नवीन उपायोंसे उस शक्तिके पुनः उत्पन्न करनेका ज्ञान ही नहीं । नये ढङ्गसे इस कार्य्यकी शिक्षा देनेसे उनलोगोंके सारे कष्ट दूर हो जायँगे । शस्य-श्यामला वसुन्धरा पुनः धन-धान्यसे परिपूर्ण हो जायगी ।

वैद्यक विद्याके ज्ञानके ह्रास हो जानेके कारण हमारी बड़ी बुरी दशा हो गयी है । अप्राकृतिक तथा बहुव्यय-साध्य चिकित्साके प्रचारसे हमारी इस प्राचीन विद्याका लोप होता जाता है । देहातमें कोसोंतक योग्य चिकित्सकका पता नहीं लगता । देशके सहस्रों आशा-कुसुम बिना चिकित्साके अकालमें ही काल कवलित होते

जाते हैं। किसी देशमें भी उसकी सन्तानोंकी ऐसी दीन दशा नहीं है। जाओ, गाँव गाँवमें आयुर्वेद विद्यालय खुलवाओ, जहाँसे योग्य तथा त्यागी चिकित्सक निकलकर इस बड़े भारी अभावकी पूर्ति करें और आर्य्य-सन्तानोंको वृथा पशुओंकी भाँति प्राण न खोने पड़ें।

प्राचीन वस्त्र-व्यवसाय नष्ट हो जानेसे देशकी आर्थिक दशा बड़ी हीन हो गयी है। व्यवसायी लोग निरुद्यमी हो बड़ी सङ्कटा-पन्न अवस्थामें है। उन्हें थोड़े थोड़ेके लिये दूसरोंका मुँह ताकना पड़ता है। जो देश अपनी आवश्यक वस्तुएँतक निर्माण नहीं कर सकता, उसकी उन्नतिकी आशा कैसे की जा सकती है। भाग्य-लक्ष्मी सदा उसके विपरीत रहती है। सूत कातने तथा वस्त्र निर्माण करनेका कार्य्य तुम लोगोंको इसीलिये सिखाया गया है कि भारतके प्रत्येक घरमें इसका प्रचार हो। देशवासी अपनी आवश्यक वस्तुएँ निर्माणकर अपना गौरव स्थिर रख सकें और देशका धन दूसरोंके हाथोंमें न जाकर भारत वसुन्धराकी श्री-वृद्धि करे।

पुत्रियो! भगवती भारतीकी अधीनतामें तुमलोग भी सत्य-पर अटल रहकर घर घरमें विद्याका प्रचार करो। आर्य्यबालाओं-को उनके पूर्व्व गौरवका ज्ञान कराओ और ऐसा प्रयत्न करो कि भारतमें सैकड़ों, सहस्रों नहीं, लाखों वीर माताएँ उत्पन्न हों। जिससे भारतमें फिर एकबार सत्ययुगका साम्राज्य हो जाय।

इस प्रकार सत्य धर्म्मपर स्थिर रहकर अपने संगठनको खूब दृढ़ रखना। अभी तुमलोगोंके समान सहस्रों त्यागियोंकी

आवश्यकता है। ऐसा प्रयत्न करते रहो कि तुम्हारा आश्रम प्रति वर्ष सैकड़ों देश-सेवक तैयार करता रहे। इसके लिये तुम्हें किसी दूसरेकी सहायताकी आवश्यकता न होगी। आश्रमके साथ लगी हुई सैकड़ों बीघे उपजाऊ जमीनमें यथेष्ट अन्न उत्पन्न होता है। वहींसे उत्पन्न हुई कपाससे वस्त्र भी निर्माण किये जाते हैं। फिर भोजन और वस्त्रको छोड़कर आवश्यकता ही किस बात-की है। प्रत्येक कार्य्यमें उत्साह, साहस तथा संगठनकी आवश्यकता होती है। जबतक तुमलोगोंमें यह गुण बने रहेंगे, तबतक तुम्हारे पथमें कोई बाधा उपस्थित न हो सकेगी।

मातृ-भूमिके सच्चे सेवको ! तुमलोगोंने जिस व्रतका अवलम्बन किया है, उसे पूरा करो। उसे पूरा करनेमें यदि तुम्हें प्राणतक विसर्जन करने पड़ें तो भी कर्तव्यच्युत न होना। तभी तुम्हारा व्रत सफल होगा। भारतवासियोंके कानोंमें जातीयताका महा-मन्त्र फूँक दो। फिर संसारकी प्रबलसे प्रबल शक्ति भी तुम्हारी गतिको रुद्ध न कर सकेगी। पुत्रो ! मेरा कर्त्तव्य पूरा हुआ और अब मैं वृद्ध भी हुआ। अब सारा भार तुमलोगोंपर है। मैं यहीं आश्रममें रहकर तुमलोगोंकी केवल ऊपरी देख भाल करता रहूँगा। प्रातःस्मरणीय पण्डित रामकिशोरजीके कर्म्मी पुत्र श्रीकमलाकिशोरजी भी यहाँ आये हुए हैं। इनकी सहायता तथा स्वामी निर्भयानन्द और माता भारतीकी अधीनतामें तुमलोग मातृ भूमिके उद्धारका झंडा उठाओ। मङ्गल मूर्त्ति भगवान श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे पथ-प्रदर्शक होंगे। भारतका भविष्य उज्ज्वल है। आर्य्य जातिका उत्थान अवश्यम्भावी है। इतना कह महाप्रभु सच्चिदा-नन्दने आसन ग्रहण किया। सारा मण्डप स्वामी सच्चिदानन्द, स्वामी निर्भयानन्द तथा भगवती भारतीकी जय-जयकारसे गूँज उठा। पाठको ! तुमलोग भी एक स्वरसे कहो "वन्देमातरम्"